सामाजिक एवम् सांस्कृतिक जीवन

i) **परिवार की संरचना-** परिवार समाज की प्राथमिक इकाई रही है और यहाँ सयुक्त परिवार सदैव ही वांछित रहा । सयुंक्त परिवार में सबसे बड़े बुजुर्ग को ठगडा कहते हैं और परिवार के सभी निर्णय करता हैं और अन्य सदस्य उसके निर्णय को मानते हैं । धन की आकस्मिक आवश्यकता पड़ने पर भी ठगडा ही ऋण उठता हैं और वापिस करने के लिए भी वही उत्तरदायी होता हैं । इतना ही नहीं गाँव की पंचायतों में, खुम्बलियों में भी वही परिवार का प्रतिनिधित्व करता है। पुरुष का दायित्व आय के संसाधनों को जुटाना हैं और परिवार का भरण पोषण करना है। इस ग्रामीण समाज की एक और विशेषता है नातेदारी । यंहा चाचा, ताया, ताई, चाची आदि सम्बोधन को लोप हैं बल्कि बाबा/बोबा, माएं, आदि सम्बोधन ही ममरे नाना-नानी और पैतृक नाना-नानी दोनों के लिए एक जैसा ही प्रयोग किया जाता है । बड़े भाईयों को दादा और बहनों को दादी कहते हैं ।

हिन्दी में नातेदारी शब्द	हाटियों में प्रयुक्त नातेदारी शब्द
दादा	नाना
दादी	नानी
नाना	नाना
नानी	नानी
पिता	बाबा/बोबा
माता	मांए
बड़ा भाई	दादा
छोटा भाई	भाईया
बड़ी बहन	दादे
छोटी बहन	भाएटे
बुआ	बेबे
चाचा	कान्छा बाबा
ताऊ	जेठा बाबा
चाची	कांछी माए
ताई	जेठे माए
ससुर	शौउरा
सास	शाशु
पति	मालअक
पत्नी	बोईर/घरवाले
मामा	मौउला/मामा

फूफा	मामा
ससुराल	शराड़े

इस गाँव के समाज में बहुपति प्रथा आज भी विद्यमान हैं और लगभग हर घर में जोड़ीदारी के एक या दो उदाहरण मिल जाते हैं जो की सयुंक्त परिवार व्यवस्था की एक मजबूत कड़ी मानी जाती हैं । यदपि वर्तमान में बहुपति प्रथा का प्रचलन बहुत कम हो रहा हैं ।

ii) **विरासत प्रणाली:** हाटी समाज में विरासत प्रणाली गिरिपार सिरमौर के सभी गाँव में अपनाई जाने वाली प्रणाली के समरूप हैं । सामान्य स्थिति में पैतृक सम्पति में घर के सभी पुरुषों का सयुक्त मालिकाना हक़ माना जाता हैं । बंटवारे की स्थिति में पैतृक सम्पति का विभाजन केवल भाइयों की संख्या के आधार पर होता हैं और बहनों को, चाहे विवाहित हो या अविवाहित, किसी प्रकार का हिस्सा नहीं मिलता है । यदि कोई व्यक्ति पुत्रविहीन ही अपनी सम्पति छोड़ता है तो पुत्रियों को विरासत मिलती हैं लेकिन विवाहित होने पर पुत्री के सबसे नजदीक नातेदार उस सम्पति की देखभाल करते हैं और उस पुत्री की आजीवन रिश्तेदार के रूप में सारी रस्में-रिवाज़ निभाते हैं लेकिन घर-जंवाई का प्रचलन कतई नहीं है और इसे समाज में बहुत ही बुरी दृष्टि से देखा जाता हैं । यदि कोई व्यक्ति सन्तान विहीन मरता हैं तो उसकी सारी सम्पति उसके भाईयों को जाती हैं लेकिन उसका भाई भी जीवित नहीं है तो उसका निकट बंधु उसका हक़दार रहता हैं । सम्पूर्ण वंशज के खत्म होने पर उस परिवार का "उगलणा" कहते हैं और उस स्थिति में उसकी सम्पति कभी-कभार लावारिस रहती हैं तो उसे देवता के मंदिर को भेंट की जाती हैं ।

परिवार में सामन्य बंटवारे की आवश्यकता पर जेठोंग और कान्छोंग की व्यवस्था रहती हैं जिसमें बड़े बेटे को जैठोंग और सबसे छोटे बेटे को कान्छोंग एक अतिरिक्त हिस्से के रूप में दिया जाता हैं । बड़े बेटे अक्सर सबसे बड़ा खेत और छोटा बेटा अक्सर पुश्तैनी मकान में प्राप्त करते हैं । घर का बड़ा वर्तन, अच्छा पशु, अच्छा वस्त्र आदि को भी बड़े बेटे का पहला अधिकार समझा जाता हैं । बंटवारे को बेड़े या आल के बुजुर्गों के समक्ष किया जाता हैं अचल सम्पति में बांटते हुए हिस्सों को पृथक करने के लिए पत्थर की बुर्जी लगाई जाती है जिसे 'ओड़ा' या 'सियाना' कहते हैं ।

वर्तमान समय में कागजों में विभाजन हिन्दू उत्तराधिकार क़ानून, 1955 के अनुरूप होता हैं लेकिन व्यवहारिक रूप से परम्परागत प्रणाली ही कायम हैं क्योंकि आज भी न तो विवाहिता बहन या पुत्री वापिस अपने मायके आकर पिता या भाई की सम्पति में हिस्सा लेती है और न ही विधवा अलग होकर पति की सम्पति का बंटवारा चाहती है बल्कि सयुंक्त परिवार में ही वह स्वयं को ज्यादा महफूज़ और सुरक्षित मानती हैं ।

iii) **जन्म-विवाह और मृत्यु से सम्बन्धित रिवाज एवं संस्कार:** ग्रामीण समाज में अपनाए जाने वाले संस्कार व रीति-रिवाज़ सदियों से चली आ रही लोक परम्परा पर आधारित होते हैं जो वहां की भौगोलिक संरचना और जलवायु पर निर्भर करते हैं । इस गाँव में जन्म, विवाह और मृत्यु से जुड़े संस्कार व मान्यताएं विशुद्ध रूप से मौलिक हैं । गर्भवती महिला को अक्सर शोक स्थल पर जाने से मनाही होती हैं और जिन जगहों पर भूत-प्रेतों का वास माना जाता हैं उन जगहों पर भी गर्भवती महिला को नहीं जाने दिया जाता हैं । चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण के समय भी गर्भवती महिला को घर से बहार नही निकलने दिया जाता हैं । नौवें महीने में गर्भवती महिला अपने मायके जाती हैं और लगभग पुरे एक महीने मायके में आतिथीय का लाभ लेती हैं साथ ही अपने सभी सगे सम्बन्धियों से जी भर कर मिलना हो जाता है । उसकी माँ हर रोज़ उसके मन पसंद के व्यंजन बनाती और खिलाती है ताकी जच्चे और बच्चे दोनों का स्वास्थ्य अच्छा हो सकें । एक महीने के अतिथिय के पीछे का तर्क समझना बहुत सरल है- कठीन प्रसव काल के समय प्रसूता का जीवन दाव पर होना क्योंकि उस समय किसी भी प्रकार की चिकित्सीय सहायता उपलब्ध नहीं होती थी और केवल गाँव की दाई जिसे *सुत्कियारी* कहा जाता हैं, ही सबसे बड़ी चिकित्सक होती थी । गर्भवती का प्रसव अपने ससुराल में ही होना अनिवार्य माना जाता है । यदपि प्रसूता को किसी भी अस्पताल में नहीं ले जाया जाता था घर के ओबरे में ही प्रसव कराया जाता था । प्रसव पश्चात प्रसूता को गुड़, और घी का काढ़ा अजवाइन के साथ दिया जाता हैं और पूरे तीन समय जच्चा व बच्चा दोनों को गर्म पानी से नहलाया जाता हैं । जिस कमरे में प्रसूता रहती है उस कमरे में केवल महिलाओं को जाने की अनुमति रहती हैं और तेरह दिन तक सूतक माना जाता हैं । बच्चे के नामकरण की रस्म कुल पुरोहित के सुझावनुरूप पाँचवें, सातवें या फिर नौवें दिन बच्चे की बुआ द्वारा सूर्योदय के समय पुरोहित द्वारा बताई गयी दिशानुरूप अखरोट के साथ गुड़, चावल और तिल, जिसे *"चिन्चावले"* कहा जाता हैं, वितरित करके रस्म पूरी की जाती हैं जिसमें एक छन्द भी बोला जाता हैं:

"चांदा मामा सूरजअ छूड़अ ला झाँव.....फलाणे के बेटे को अमरु नांव" ।

अर्थात चाँद व सूरज की किरणों के साथ अमुक के बेटे का अमुक नाम रखा गया हैं । जिन अखरोट को नामकरण के लिए प्रयोग किया जाता हैं उन्हें बाद में बच्चे की जन्म राशी उस समय के लग्नानुसार कुल पुरोहित तय करता हैं और उस राशी के अक्षरानुसार ही बच्चे का नामकरण किया जाता हैं ।

विवाह तीन प्रकार के प्रचलित हैं- जाजडा, हार और खिताय । इसमे जाजडा को सबसे अधिक प्राथमिकता प्रदान की जाती हैं और 99% विवाह इसी पद्दति से होते हैं । इस प्रकार के विवाह में परिवार के बड़े-बुजुर्गों द्वारा ही रिश्ते तय किये जाते हैं और अधिकतर मामलों में लड़का और लड़की एक दुसरे को केवल विवाह पश्चात ही देखते हैं इसमें रिश्ता पक्का करने के लिए लडके के पिता लड़की वाले के घर जा कर सगाई की रस्म पुरी करता है जिसमे केवल एक

रुपये का सिक्का लड़की के समक्ष रखा जाता है अगर लड़की उस सिक्के को उठा लेती हैं तो रिश्ता पक्का समझा जाता हैं । दोनों पक्षों के कुल पुरोहित आपस में साथ बैठ कर जाज्ड़े की तिथि निश्चित करते हैं तत्पश्चात दोनों पक्षों से *माश* खाने की रस्म पुरी की जाती हैं जिसमे पहले लडके पक्ष से गाँव के १० से १२ मौजिज व्यक्ति जा कर लड़की के घर आथित्य सत्कार का लाभ लेते हैं और बाद में लड़की पक्ष को भी माश खाने बुलाया जाता हैं । सबसे बड़े बेटे का जाजड़ा बड़ी धूम धाम से किया जाता है जसे पीढ़ी में एक बार ही दिया जाता हैं और इसमें पुरी गाँव में चूल्हा निओग दी जाती हैं और दो दिन तक गाँव के किसी घर में चुल्हा नही जलता हैं । इसमें 15 से 20 टीन घी, 10 से 15 बकरे, पीने वाले को भर पेट *सूर* (शराब) और राशन की व्यवस्था की जाती हैं । इस प्रकार के विवाह में एक और विशेषता यह होती है कि इसमें बारात लड़की की तरफ से आती है जिसमें लड़की के गाँव के सभी घर से एक-एक व्यक्ति बाराती आता हैं जिन्हें जाजडू कहते हैं । जाजडू सुबह अपने गाँव की उस गाँव में पहले विवाहित लड़की या दाएचारे की या फिर भानजी के घर जाकर *पोरोड़* देते हैं जिसमें उबले गेंहू और दो रुपये दिए जाते हैं और उनका सूर, मुड़े और चाय से स्वागत किया जाता हैं । बड़े जाजड़े में एक और विशेषता यह भी होती है कि गाँव के हर घर से एक पुरुष टोलुवा और एक महिला रोटिआरे जाती हैं और विवाह सम्पन्न न होने तक उस घर में काम करते हैं । बड़ी शादी में हर घर से कारज़ के लिए स्वेच्छा से अनाज, घी और ऐसों से भी मदद की जाती हैं और जब देनदार के घर में जाजड़ा होता है तो लेनदार उस वास्तु या पैसे को वापिस लौटता हैं ।

दुसरे प्रकार का विवाह होता हैं हार-जिसमें लड़का अपनी पसंद की लड़की को भगा कर अपने घर लाता है इसमें लड़की की भी सहमति होत्ती हैं और बाद में दोनों पक्षों के *मौजिज* (अनुभवी बुजुर्ग) व्यक्ति बैठकर मामले को सुलझाते हैं । दंड स्वरुप लडके वाले से बकरा और *ठीला* (एक समय का भोजन) वसूला जाता हैं और इस प्रकार के विवाह को भी समाज में स्वीकार्य होता है ।

तीसरे प्रकार का विवाह होता है खिताय- जिसमें तलाक शुदा महिला के साथ विवाह किया जाता है और इसमें तलाक के समय ही खीत के राशी होने वाले पति की तरफ से महिला के मायके द्वारा पहले पति को प्रदान की जाती हैं और एक ऐसा समय था जब जितनी ऊँची खीत की राशी होत्ती थी उतना ही ऊँचा महीला का कद माना जाता था । इस प्रकार के विवाह के समय यदपि ज्यादा खर्च दावत पर नहीं किया जाता था और सादे समारोह में ही विवाह सम्पन्न किया जाता था लेकिन इस प्रकार के विवाह में भी महिला की तरफ से गाँव के कुछ लोग बाराती आते थे ।

एक अन्य प्रकार के विवाह का भी प्रचलन रहा है जिसे बाला-विवाह कहते थे । बाला-विवाह एक प्रकार का बाल-विवाह ही था जिसका प्रचलन इस गाँव में भी था जो पीढ़ी अब ६० या ७० की उम्र में जी रही हैं उनके विवाह बचपन में ही तय किये जाते थे और बहुत छोटी उम्र में ही विवाह किये जाते थे । लेकिन विवाहिता अपने ससुराल तभी जाती थे जब उसकी उम्र विवाह

के लायक होती थी लेकिन तब तक उसके ससुराल वाले इसके लिए हर त्यौहार, मेलें, उत्सव और पर्व में नए कपड़े और मेले तथा त्यौहारों का हिस्सा जरूर भिजवाते थे ।

मृत्यु संस्कार के समय मृतक के परिवार के साथ-साथ सम्पूर्ण बेडा या आल शोक में रहता है और तीन, पाँच या फिर अधिकतर सात दिनों तक शोक मनाया जाता है कई बार परिस्थित वश एक हे दिन में भी शोक खोल दिया जाता हैं । मृतक को टौंस नदी के किनारे निर्धारति श्मशान घाट पर जलाया जाता हैं जिसके लिए लकड़ी का प्रबंध गाँव में रहने वाले हरिजन भी करते हैं और इसके एवज में उन्हें पैसा दिया जाता हैं लेकिन यह पैसा मात्र अनुदान हैं न की इसकी कीमत । मोबाइल फोन के प्रचलन से पूर्व हरिजन समुदाय के लोग रिश्तेदारों के घर मृत्यु के सूचना देने जाते थे जिसे *'काज़ू'* कहते थे और रिश्तेदार उसे भोजन उपरान्त 'काज़था' देते थे जिसमें गेंहू का पाथा और घी दिया जाता था । शोक खुलवाने के समय हर रिश्तेदार अपने साथ एक घी की *'लोट्की'* और माश का *'सोला'* ले जाते हैं और गाँव के हर घर से एक आटे का और माश का *सोला* घर की महिला शोकाकुल परिवार के घर ले जाती हैं और हरिजन घर की महिला अपने साथ घास या लकड़ी ले जाती हैं ताकी

शोकाकुल परिवार की सहायता हो सकें । शोक के समय हल्दी का सेवन और '*तुड़का*' लगाना वर्जित है । खेत में बैल नहीं जोते हैं और अदरक के खेत में नहीं जाते हैं । मंदिर और देवालयों में जाना वर्जित हैं । भाट शोकाकुल परिवार और बेड़े में खाना नहीं खाते हैं और न ही पानी पीते हैं लेकिन शोक के अंतिम दिन भाट ही सारे खाने का प्रबंध करते हैं । हरिद्वार के लिए या तो तीसरे या फिर पांचवे दिन जाते हैं जिसमें पिंड दान हेतु संस्कार पूरा किया जाता हैं लेकीन कई बार शोक खुलने के पश्चात् भी हरिद्वार में पिंड दान के लिए लोग जाते हैं ।

iv. पर्व, उत्सव, मेले एवं त्यौहार: सिरमौर का गिरिपार गाँव झकान्डो में लगभग हर महा में कोइ न कोई पर्व या उत्सव मनाया जाता हैं । माँघ महा में संक्रान्ति और खोड़ा त्यौहार मनाए जाते हैं । संक्रांति के दिन हर घर से एक व्यक्ति शिरगुल महाराज के मंदिर और महासू महाराज के मंदिर जाता हैं और पुरे वर्ष भर के लिए परिवार के हर सदस्य के सुख और सम्पन्नता की कामना करता हैं । कई लोग नैनिधार में स्थित नाएण मंदिर भी संक्रांति के दिन जाते हैं । फाल्गुन के महीने में *"मूल'* के अवसर पर हर घर में सिडकु के लिए *'अथारा'* लगाना अनिवार्य माना जाता हैं । चैत्र माह में अष्टमी के दिन हर घर में एक व्यक्ति व्रत रखता है और कई घरों में इस अवसर पर देवी को प्रसन्न करने के लिए बकरी *(पाठी)* काटी जाती हैं जिसे *"लौऊ छीट"* (रक्त चढ़ावा) कहा जाता हैं । वैसाख महीने में विशु मेले संक्रांति से प्रारम्भ होते हैं और पूरे माह तक चलते हैं । इस गाँव में नाएणे और बागनल का विशु प्रमुखता से मनाए जाते हैं । इन दोनों विशु में गाँव से नाचते-बजाते जातर जाती थी जिसमें पुरे गाँव के सभी पुरुष एक जुलुस के रूप में निर्धारित मेले स्थल पर पहुंचते थे । नाएणे के विशु में आरम्भिक समय में चार खुन्दों के विशु आते थे जिसमें झकान्डो से झोकटियाल, कीनू पनोग और हल्लाह से जोवाऊ-पौचटा, रास्त से औजौउ और कोटि-बौंच से सिन्गटोऊ की जातर नाचते हुए आती थी । बाग्नल में झोकटियाल और थोबौउ के विशु कफोटी नामक स्थान पर एक साथ मिलते थे और

दूसरी तरफ गब्दौऊ का विशु आता था । वर्तमान समय मे नाएणे का विशु तो मनाया जाता हैं लेकिन जातर केवल अब नैनिधार के महिसाणो की ही जाती है जबकी बाग्नल का विशु अब नहीं मनाया जाता हैं क्योंकि इसमें हर बार लड़ाई-झगड़े होते रहें । जेठ माह में 'मीनस का मौण' त्यौहार होता था जिसमें चार खुन्दों का आगमन होता था -इसमें झकान्डो से झोकटियाल, शिमला के ध्म्ब्रौली-बिरौली से ध्म्ब्राऊ-बिग्राऊ, उत्तराखंड के जौनसार के बईएला से तिरनोऊ और कन्डो-भटनौल से चंदौऊ अपनी पुरी ख़त के साथ और गाजे बाजे सहित नाचते गाते आते थे । ये वीरता और पराक्रम का त्यौहार होता था और इसमें महासू महाराज के ध्वज तले मीनस की शीला पर एक खोश द्वारा टीम्बुर लगाया जाता था जिसके चारों और एक रक्षा पंक्ति बनाई जाती थे और बाकी तीन खोश इसे गिराने के लिए संघर्ष करते थे । इस संघर्ष में कई बार झगड़े होते थे और कई जाने इस संघर्ष में गई लेकिन कोई अदालती मुकद्दमें नहीं होते थे और केवल १ रू0 दण्ड स्वरुप दिया जाता था । इस अवसर पर घर से महिलाऐं तेल्पाकी रोटी साथ खाने के लिए ले जाती थी और महिलाओं और कच्ची उम्र के लोगों को अम्बोटा से नीचे नहीं जाने दिया जाता था ये लोग इसी स्थान पर नाचना गाना करते थे और जब मौण में गए पुरुष वापिस इस स्थल पर पहुंचते थे तो उन्हें तेल्पाकी खिलाई जाती थी । मौण पर्व की उत्पति शिरगुल महाराज द्वारा चुड़धार से भागे राक्षस का वध करने से जुडी हैं । वही राक्षस चुड़धार से शिरगुल के प्रहार से बचने के लिए जमीन के नीचे से भागा थे और बौंच के समीप गुमराह नामक स्थान पर बहार निकला था इसके पश्चात भंगाल के रास्ते टौंस की तरफ दौड़ा और मीनस के समीप श्रीगुल के वार से हताहत होकर विशाल काय शरीर पानी में सड़ने लगा जिससे मीनस और टौंस का पानी दूषित होने लगा और इस राक्षस की काया को हटाने के लिए चार खुन्दों को बुलाया गया था और पानी के शुद्धिकरण हेतु सुखा टिम्बुर डाला गया तब से ये प्रचलन मेले के रूप में मनाया जाता रहा लेकिन झगड़े की सम्भावना को देखते हुई इसे अब पुरी तरह बंद किया गया हैं । एक और मत भे इस मौण को लेकर प्रचलित है- ऐसा माना जाता हैं कि गब्दौउ भाट ने महासू महाराज का *'पाथा'* (नई फसल का पहला चढावा) उगा कर मीनस में विश्राम किया और वहां उपस्थित पाँच खुन्द जिसमें उपरोक्त चार खोश के अतिरिक्त कीनू-पनौग और हल्लाह के जोआऊ पौचटा शामिल थे, ने जबरदस्ती उस *'खलीक' पाथे द्वारा उगाया गया अनाज)* के आटे को ग्ब्दौऊ भाट से छीन कर रोटी पकाई और खाने लगे बाद में महासु महाराज का दोष लगा लेकिन इनमे से पांचवा खोश जोवाऊ-पोचटा दोष से बच गया क्योंकि उसने उस आटे से बनी रोटी खाने से मना किया था । इस दोष के निवारण हेतु हर साल इन चारों खशों को महासु की छडी मीनस की इस शिला पर लाकर अपनी गलती का पछतावा करना पड़ता था और बाद में यही रस्म एक पर्व के रूप में विकसित हुई ।

जेठ और अषाढ़ की संक्रांति को चांदपुर धार का मैला लगता हैं यदपि प्रत्यक्ष रूप से हाटी समाज का इससे ताल्लुक नहीं है लेकिन इस गाँव के लोग भी इस मेले में सम्मिलित होते हैं । सावन माह में हरियाल्टी का मेला मनाया जाता हैं और झकांडो की हरियाल्टी संक्रांति से दूसरे दिन मनाई जाती है इसमें स्थानीय फलों की भरमार के अतिरिक्त पहलवानी खेली जाती

हैं और नाचती हुई जातर ठारी प्रांगण से स्कूल के मैदान तक जाती हैं । संक्रान्ति के दिन घर में '*पाप*' (आत्म हत्या दोष) जिमाया जाता हैं जिसमे नमक और मीठे रहित "*चिल्टे*" पकाकर घी के साथ पाप को चढाते हैं और प्रसाद स्वरुप परिवार के सदस्यों को भी देते हैं ।
असोज माह में अष्टमी का त्यौहार मनाया जाता है और इस अष्टमी के दिन हर घर में इच्छुक लोग व्रत करते हैं कई घरों में इस दिन भी बकरी (पाठी) काटी जाती है और पूजा के समय गुड़ और आटे का प्रसाद बनाया जाता हैं । इस दिन देवी का *'बंध'* (करार) रखा जाता है और ये पूजा पशुधन को सुरक्षित रखने हेतु की जाती हैं ।

कार्तिक व मार्गशीष के माह में गिरिपार के हाटियों का महत्वपूर्ण त्यौहार है मशराली है जिसका आयोजन भारत के अन्य भागों में मनाई जाने वाली दिवाली के एक माह बाद किया जाता है इसलिए इसे '*बूढी दियाली*' कहा जाता है. इसे मशराली इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस त्यौहार का प्रारम्भ मार्गशीष माह की अमावस्या के दिन माश से बनाने वाली तेल्पाकी से होता है जिसे *"ताइये लाणा"* कहते हैं ।

छोटी अमावस्या के दिन गाँव के बहार बच्चे और नौजवान मिलकर संध्या के समय बलिराज या बद्राज़ जलाते हैं जिसके लिए दस दिन पहले से गाँव के नवयुक लकड़ियाँ, सूखी कंटीली झाड़ियाँ और सूखा घास इकट्ठा करते हैं. ढोल के साथ नवयुवक और बच्चे उस स्थान पर पंहुंचते हैं और एकत्रित किये हुए सूखे ढेर को आग लगाकर इसके इर्द-गिर्द नाचते हैं. इसका पारंपरिक महत्व इस बात से हैं कि बुराई पर अच्छाई की जीत हों अन्धकार से प्रकाश की और आगमन हो और सम्पूर्ण गाँव की बुराइयाँ इन सूखी लकड़ी की तरह जल जाएँ ।

बड़ी अमावस्या के दिन ही बूढी दियाली का आगाज़ होता है । शाम के समय लोग अपने अपने घरों में बीट या डाओ बनाते हैं जो कि या तो बिऊल की सूखी पतली लकड़ी जिसे 'ष्णयाठा' कहा जाता है या फिर चीड की सूखी लकड़ी जिसे 'शैका' कहते हैं से बनाया जाता है । शाम के भोजन के बाद गाँव के सभी लोग सांझे प्रांगण में एकत्र हो कर ढोल, दुमानो, करनाल और ताली की धुनों के साथ नाचना गाना आरम्भ करते हैं । सुबह तीन-चार बजे केवल पुरुष सांझे प्रांगण में एकत्र हो कर हारूल गायन चलता है । गायन में फूहड़ता (जीरू) के कारण महिलाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता हैं लेकिन दूर से महिलायें इसका आनदं ले सकती हैं । नाचती-गाती टोली महासू मंदिर के समीप दो भागों में बंट जाती है और एक दूसरे के विरूद्ध आमने सामने अपना अपना पराक्रम दिखाने की होड़ में रहती है । दोनों गुट जब बिल्कुल नजदीक आते हैं तो एक दूसरे से शत्रुता का आडम्बर करते हैं ताकि अधिक ज़ोश और आनन्द भरा जा सकें. दोनों गुटों का आपस में मिलना परस्पर भाईचारा, एकता, प्रेम और सौहार्द का प्रतीक हैं. सुबह की बेला होते ही नृत्यरत समूह वापिस गंतव्य स्थान पर पहुँचता है और इसके बाद अश्लील गायन को बंद कर दिया जाता है 'सियाहरण' गायन उपरान्त महिलायें भी रासा नृत्य में भाग लेती हैं. सभी घरों के बुज़ुर्ग अखरोट के पाँच दाने देवता के प्रांगण में भेंट स्वरुप चढ़ाते हैं जिसे *'पान्जडी'* कहते हैं और यह रस्म *'देओ भीऊंराणा'* कहा जाता हैं ।

प्रांगण में उपस्थित युवक-युवतियाँ भेंट में चढ़ाये गए अखरोट के लिए हास्यरूप में छिना-झपटी करते हैं ।

दियाली के दूसरे दिन को '*भिऊंरी*' कहते हैं जिसका नामकरण एक नारी की अत्यंत मार्मिक मायके की बिरह गाथा के ऊपर किया गया है जिसका नाम भिऊंरी था और जिसका मायके में त्यौहार के इस अवसर पर बेसब्री से इंतज़ार होता है और जिसे बुलाने के लिए भिऊंरी के सभी परिजन जाते हैं जिन्हें संयोगवंश इस बात की भनक नहीं होती कि उनकी लाडली अब इस दुनियां में नहीं हैं. इस दिन गाँव की विवाहित लड़कियाँ अपने मायके में भिऊंरी गायन में सम्मिलित होती हैं और इसका गायन बिना वाद्य यंत्रों के ही गाया जाता है क्योंकि यह एक प्रकार का शोक सांत्वना स्वरुप मार्मिक गीत है. गायन के अंत में गाँव की महिलाएं हर घर से मुड़ा, शकोली और अखरोट लाकर भिऊंरी गायन वाली सभी लड़कियों को भेंट करती है जिसे बाद में बाँट दिया जाता है. कभी कभी कुछ उपस्थित श्रोता गायन वालों को कुछ पैसे भी भेंट करते हैं. पूरे दिन गाँव के लोग, मायके आयी विवाहित लड़कियाँ तथा मेहमान एक दूसरे के घर जाते हैं और खातिरदारी में उन्हें मुड़ा, शाकोली तथा अखरोट खिलाया जाता है.

भिऊंरी के दिन कुछ और प्रचलित रीति-रिवाजों को उल्लेखित करना भी आवश्यक है. इस दिन लोग अपने घरों में लस्सी नहीं बनाते हैं और पूरी दही को खाने में इस्तेमाल किया जाता है. इस दिन घरेलू पशुओं की भी पूजा की जाते है जिसमें गाय तथा बैल प्रमुख होते हैं. उन्हें धूप में बांधकर कर चावल का '*पीछ*' *(चावल पकाने का बाद बचा अतिरिक्त तरल भाग)* दिया जाता हैं और सींगों पर घी बनाने के बाद बचे मिश्रण को, जिसे बौलोई कहते हैं, लगाया जाता है. सम्मान स्वरुप पशुओं को अखरोट चढ़ाये जाते हैं जिन्हें छोटा बच्चा बाद में उठा लेता हैं । इस दिन गाँव में कोली समुदाय के लोग खशों-कनैतों के घर अखरोट भेंट स्वरुप ले जाते थे जिसे *'पान्जडी'* कहते हैं । कभी कभी ख़ास रिश्तों के अनुरूप *'भिऊंरोज़'* भी लाया जाता था जिसमें एक सौ अखरोट भेंट दिया जाते था और बाद में उसे भी उपहार वापिस दिया जाता था- जैसे बकरी, कपडे, या फिर अन्य पशु । इसी दिन कोली, चनाल या डॉम जाति के लोग विशेष पौशाक चोलटू पहनकर हुडुक नृत्य करते हुए कई गाँव में जाते थे और उन्हें मुड़ा तथा तेल्पाकी भेंट की जाती थी । दिवाली के तीसरे दिन को *'जोंदअए'* कहा जाता है इस दिन सुबह से ही नृत्य-गायन, रासा नृत्य जिसे '*तांद*' कहते है, शुरू होता है । दर्शकों के मनोरंजन के लिए गाँव के कलाकार बीच-बीच में सन्देश प्रदत हास्य नाटक जिसे *'खेल्टू/खैल'* कहा जाता है को प्रदर्शित करते है. इस दिन विशेष पौशाक चोल्टू के साथ नृत्य किया जाता हैं जिसमें हारूल गायन जिसमे पोरोटिया, ठुंदु-कमरौउ, ठिन्दाऊ-सिन्ग्टोऊ, जुआऊ-थोबौउ, संगडाह का ओछ्बू, लाणीया-मोईलाणीया आदि का काफी समावेश रहता है ।

पौष के माह में भातियोज का त्यौहार गिरिपार का सबसे महत्वपूर्ण किन्तु खर्चीला त्यौहार है और हाटीगाँव में भी यह बड़ी धूमधाम से मनाया जाता हैं । इसकी शुरुआत २७ गते पौष में पड़ने वाले *"बोश्तो"* से होती है जिस दिन सुबह ४ बजे उलौउले बनाये जाते हैं और घी के साथ सेवन किया जाता है । दुसरे दिन यानी २८ गते पौष को "भातियोज़" के दिन हर घर

में बकरा काटा जाता है । कई सयुंक्त परिवारों में दो या तीन बकरे भी काटे जाते हैं और पुरे मांघ के माह में दावतों का दौर चलता हैं । रिश्तेदारों का इस माह एक-दुसरे के घर अवश्य आवागमन होता हैं और विवाहित लड़कियों को मायके के तरफ से गुड़ की भैली और आटा या चावल का पाथा घर के किसी सदस्य द्वारा अवश्य इसी माह पंहुचाया जाता है । कटे हुए बकरे का सूखा मीट साल भर के लिए भी रखा जाता हैं जिसे पतली व बारीक 'लोष' के रूप में घर के छत पर रस्सी से टांग कर अंगीठी के धुंएँ में खूब सुखाया जाता हैं फिर मकान की ठंडी जगह पर या फिर डाल या घीला आदि में सुरक्षित रखा जाता हैं । मांघ के माह में हाटीमें *"मेलाऊले"* (सहभोज) लगाने का भी प्रचलन है जिसमें अपने गियानेऊ और मत्याण बेड़े के सभी परिवारों से एक-एक सदस्य एक शाम मेहमान के तौर पर बुलाया जाता हैं और उस दिन या तो एक और बकरा काटा जाता हैं या फिर पहले काटे गए बकरे का ही मीट पकाया जाता हैं और खूब सूर चलती है । हालाँकि ये प्रचलन अब काफी कम हो गया है और अब केवल निकट पड़ोसियों को ही "मेलाऊले" में बुलाया जाता है ।

इसके अतिरिक्त *भादों माह में* पान्ज्वी का पर्व भी इस गाँव में मनाया जाता है महासू के मंदिर से महासू की छड़ियाँ पंचमी के दिन निकाल कर महासू के ठाणे व माले समीप के कुँए तक गाजे बाजे के साथ ले जा कर देव की छड़ियों पर कुंएं का शुद्ध जल छिड़का जाता हैं जिसे 'देवता का नाहण' कहते हैं। पंचमी से पूर्व महासू देवता भी गाँव में भ्रमण के लिए निकलता है और सभी ठाणे देवता की छड़ियों के साथ जाते हैं और शाम को सुनिश्चित किये गए घर में ही रुकते हैं और देव की छड़ियों को घर की छत पर रखा जाता हैं ।

असोज़ माह में गुगा नवमी और जन्माष्टमी का पर्व भी इस गाँव में मनाया जाता है गुगा नवमी हरिजनों में अधिक लोकप्रिय है लेकिन खोश और भाट भी इस गुगा नवमी में शरीक होते हैं और पीर देव की अराधना करते हैं ।

iv) धार्मिक स्थिति- हाटी १००% आवादी हिन्दू धर्म को मानती है लेकिन हिन्दुओं के मुख्य देव-देवियाँ से इतर विशिष्ट धार्मिक मान्यताएं हैं । झकान्डो गाँव में महासू, शिरगुल, पीर, कोईलू, कुलाना, ठारी, चार वीर, जोलौऊ, ख्वाजा (रक्षक देव) आदि देवी-देवताओं की मान्यता हैं । *पाशियों* में महासू और *शाठीयों* में शिरगुल कुल देवता के रूप में पूजा जाता हैं । ठारी को शाठी-पाशी दोनों द्वारा थाती शक्ति का प्रतीक हेतु पूजा जाता हैं । एक पीढी में एक बार ठारी माता की शांत का आयोजन अवश्य किया जाता है ताकि शत्रुओं से रक्षा हो सके । आज सम्पूर्ण गिरिपार में केवल झोकटियालों के पास जलाहू देवता का आवास एक प्राकृतिक गुफा में अवस्थित हैं जिसका कोई भी साकार रूप मंदिर में नहीं है केवल लाल कपडे की ध्वजा प्रतीक स्वरूप लगाई जाती है और नमक रहित आटे का *'रोट'* चढ़ाया जाता है । हालाँकि आधुनिकता की इस दौड़ में इस गुफा के ठीक सामने एक मंदिर स्थापित किया गया हैं । इस गाँव में गिरिपार सिरमौर का एक मात्र ठारी माता का भूमिगत तिकोना मंदिर हैं जिसकी स्थापना का शुभ मुहर्त पाबूच महीला ने दिया था जिसके कारण इसे आँगण न कहकर आज भी आन्गटी कहा जाता हैं । द्राबिल स्थित प्राचीन महासू मंदिर

की वास्तविक स्थापना झोकटियालों ने ही की थी जिसके पुजारी गब्दौऊ थे और आज भी महासू महाराज को हर छह माह में '*देव कारी*' (देवता को नियमित रूप से फसल आने पर दिया जाने वाला पहला भाग) या पाथा प्रदान किया जाता हैं । जब भी द्रबिल का महासू कंही भी जागरण के लिए जाता है तो झोकटियालों का जाना अनिवार्य हैं । चूँकि झोकटियाल पाशी हैं इसलिए महासू इनका कुलदेवता हैं और उत्तराखंड के हनौल मंदिर हर वर्ष कारद के रूप में हर घर से श्रद्दालु जाते हैं साथ ही वहां की '*कारी*' भी हर वर्ष प्रदान के जाती है। हर संक्रांति के दिन घर का बड़ा बुजुर्ग गाँव के सभी मंदिरों में परिवार की सुख कामना के लिए जाता है और चढ़ावे में एक सैर आटा, चावल और ताम्बे का सिक्का भेट करता हैं । यदि देवी-देवताओं के दिए '*बंध' (करार)* का समय पर विवारण न हो तो उसका '*झूठ*' (दंड) दिया जाता हैं । ठारी माता को गुड की भैली केवल रविवार को चढ़ाई जाती है और कोई बड़ी कमाना पूर्ण होने पर पाठी (बकरी) को भी चढ़ाया जाता है या फिर बकरे को '*ढोलकरा' (देवता के नाम पर मंदिर परिसर में छोड़ा जाने वाला बकरा)* कहकर वहां छोड़ दिया जाता है । हर संक्रान्ति के दिन ढाकी, भगनाण द्वारा हर घर जाकर देव कार्य हेतु निश्चित आटा और घी एकत्र किया जाता है । संक्रांति के दिन घर में *पाप* जिमाया जाता है और घर की विवाहित लड़कियां मायके आकर *पाप* के चावल उबाल कर सभी को खिलती हैं । हर देव और देवी की पूजा अर्चना करने की अलग पद्दति होती है जिसे *"देओ पोजण के काण्डे"* कहते हैं । महासू और शिरगुल मंदिर के पुजारी देवथल के भगनाण समुदाय से है जो की हर संक्रांति के दिन महासू और शिरगुल मन्दिरों में पूजा-अर्चना करते हैं और इस दिन वे उपवास रखते हैं । इस पूजा के एवज़ में गाँव के हर घर से हर फसल के आगमन पर छह माह में *"खलीक"* (देव पूजन का मेहनताना) दी जाती हैं । हर फसल का पहला भाग *'देओ के पाथे"* के रूप में रखा जाता है जिसे घर का मुखिया मंदिर में जा कर खुद देवता को चढ़ाता है । हर संक्रांति के दिन हर घर का बुजुर्ग या ठगड़ा अपने कुल देवता के मंदिर अवश्य जाता है और वहां परिवार के हर सदस्यों की सुख समृद्धि की कामना करता है और देवता की आस्था स्वरूप एक रुपया *"थामण"* (दोष, क्लेश को थामने वाला) चढाता है । हरिजन समुदाय में पीर और नारसिंग देव विशेष रूप से माना जाता हैं गुगा नवमी के दिन पीर की माड़ी में पूरी रात जागरण होता है लेकिन इससे पूर्व पीर १५ दिन के लिए अपनी माड़ी से बहार निकल कर हर गाँव में यात्रा के लिए जाता है साथ में '*पीराटे' (पीर देवता की छडी यात्रा करने वाले)* इस देवता के खांडे स्वरुप "कोरड़े' और छड़ी साथ चलती हैं नवमी से ठीक एक दिन पहले वापिस अपनी माड़ी में पहुंचता है और इच्छुक व्यक्ति नवमी के दिन व्रत रखते हैं और पूरी रात भर दो-दो घंटे के अंतराल में पीर की अर्चना की जाती है जिसे ड़ोंरू के साथ वांचा जाता है जिसे *"बार"* (भुकडू और पीर की गाथा) कहते हैं । मंदिर में चढ़ावा स्वरूप आटा, चावला और कुछ सिक्के दिए जाते है जिसे "पुजावोण" कहते हैं । मन्नत पूरी होने की स्थिति में मंदिर को बकरा जिसे *'घान्ड्वा' (देवता के नाम का बकरा)* कहते हैं, प्रदान किया जाता है ।

v) पूजा पद्धति-गाँव में महासू महाराज, श्रीगुल महाराज, कुलाणा महाराज, पीर महाराज और ठारी देवी का मंदिर हैं और इनकी अलग-अलग पूजा पद्दति हैं । महासू देवता के लिए दिन के दो वक्त नबद की जाती है और नबद बजाने की विशेष शैली होती है इसलिए केवल ढाकी समुदाय (व्यकार) का जानकार व्यक्ति ही इसे बजाता हैं । महासू की *पूजेल* (पूजा) दिन के २ से ३ बजे के बीच होती हैं और इस पूजा के लिए अलग प्रकार की धुन बजाई जाती हैं इस वक्त मंदिर का पुजारी भगवा वस्त्र जो कि महासू की पताका का रंग होता है पहन कर मंदिर के समीप प्राकृतिक जल से भरे कुएं से विशेष लौटे जिसे 'गाडू' कहते हैं से जल लाकर आग के अंगारे पूजा के पात्र में लेकर इसमें पाजे, घी और चावल के दाने, हवन सामग्री जलते अंगारों पर डालता हैं और मंदिर के गर्भ गृह *(पौल्)* में जाकर मुख्य मूर्ति की स्तुति करता हैं और उस समय विशेष धुन ढोल, नगाड़े, दुमानो, ताली से ढाकियों द्वारा बजाई जाती हैं और तब तक बजाई जाती हैं जब तक देव पूजन की प्रक्रिया चलती रहती हैं । देव पूजन की गायन पद्दति को देव कांडी कहा जाता है और जब जागरण होता है तो उस वक्त पुरी देव कांडी गाते हुए लगभग २ घंटे का समय लगता हैं और उस समय तक वाद्य यंत्रो को बजाना जारी रखा जाता हैं । लोग अपनी समस्याओं का निराकरण करने हेतु महासू के उतारीक *'माली'* के पास जाकर तुरंत उपाय प्राप्त करते हैं और कई बार बात की सत्यता को परखने के लिए बकरे की पीठ पर पानी का हल्का सा हाथ से छिडकाव डाल कर विचार कटा जाता है और अगर उस विचार पर बकरा खुद पानी छिटक दें तो विचार की प्रमाणिकता सिद्ध मानी जाती हैं और अगर बकरा पानी न छिटके तो इस पर देवता के ना या मनाही समझी जाती हैं इस प्रथा को *"चूलू पाना और बकरा धुणणा"* कहते हैं । पंचमी के दिन महासू की पालकी और छड़ियाँ स्नान के लिए पुरे गाजे बाजे के साथ मंदिर से कुँए तक जाती है और सैंकड़ों श्रदधालुओं का हुजूम साथ चलता हैं स्नान उपरान्त सांझे प्रांगन में दर्शन हेतु पालकी रखी जाती है लोग अपनी श्रद्धा से पैसो को चढ़ावे के रूप में भेंट देते हैं । गाँव में शोक के समय शोकाकुल परिवार और बेड़ा न तो मंदिर जाते है और न ही पूजा या उपासना में सम्मिलित होते हैं बल्कि गाँव के माली, ठाणी, भण्डारी, पुजारी शोकाकुल परिवार और बड़े में रोटी नहीं खाते हैं । इस गाँव के हर घर से एक व्यक्ति हर साल महासू के बड़े '*थरण' (धाम)* उत्तराखंड के हनोल में अवश्य जाते हैं और एक रात वहीं मंदिर परिसर में रुकते हैं जिसे "खेवणी" कहते हैं । उस दौरान फसल का भाग एक पाथे के रूप में घर से ले जाकर वहां चढ़ाया जाता हैं ।

शिरगुल महाराज की पूजा पद्दति थोड़ी सरल हैं क्योकि इसे *'धर्मी'* (दयालु) देव समझा जाता है । सामान्य दिनों की पूजा बिना वद्य यंत्रों के की जाती हैं क्योंकि झकांडो के झोकटीयाल का कुल देवता महासू है यदपि शिरगुल का उपसान भी करते हैं । शिरगुल को कुल देवता के रूप में केवल देवे मानते हैं । *भटोडी* और भागनाड़ी में ही शिरगुल मंदिर हैं । भटोडी के शिरगुल की हर दिन दो बार पूजा की जाती हैं और पूजा के समय '*गाडू*' (पवित्र

जल) नजदीक के कुँए से पुजारी द्वारा लाया जाता हैं बिन्यान के हर घर से बारी बारी खुद शिरगुल की पूजा की जाती हैं लेकिन भगनाड़ी के शिरगुल की पूजा देवथल के भगनाण महीने की संक्रान्ति के दिन ही करते हैं पूजा के लिए हर घर से घी एकत्र किया जाता हैं जिसे '*दिअण*' कहते हैं । जागरण के समय शिरगुल देव पूजा की गायन शैली को देव '*कांडी*' कहते है और पूरी गाथा गायन के लिए ३ घंटे लगते हैं । इस गाँव के हर घर से एक व्यक्ति हर साल या तीसरे साल श्रीगुल महाराज के सबसे बड़े तीर्थ स्थल चुड़धार अवश्य जाते हैं ।

देवनल के कुलाणा महाराज की पूजा भी दिन में दो बार की जाती हैं और डेटी समुदाय इस दायित्व को निभाते हैं । कुलाणा देवता के लिए घर की महिला द्वारा उस घी की पहली धार चढ़ाने की परम्परा हैं जब गाय नए दूध में आती है । इसलिए इसे पशुओं के देवता भी माना जाता हैं । पीर की पूजा उपासना का कार्य हरिजन समुदाय के पास है भटोडी में पीर महाराज की माड़ी है और यहाँ भी दिन में एक बार सुबह के समय पूजा की जाती है जिसका दायित्व कल्याण परिवार को सौंपा हुआ है । गुगाल के समय पीर की स्तुति में लयवद्ध 'बार' वांचा जाता है जिसमे केवल डमरू और शंख बजाया जाता । पीर की पूजा पद्धति में एक मुख्य शस्त्र शामिल होता है जिसे '*कोरडा*' कहते और जब किसी में *'उतार' (हवा)* आता है तो उस समय जलती आग में तपाये गए उन *कोराडो* को पीठ में मारा जाता हैं । जब बार वाचा जाता है तो उस समय कई ऐसे लोगों को को भी *"खैल" (हवा)* आती है जिस पर या तो कोई बुरा साया हों या फिर किसी के बुरी नज़र लगी हो या फिर किसी दुष्ट आत्मा के प्रभाव में आया हों । पीर के माली या उतारीक उन सभी बुरे प्रभाव से इन्हें बचाता हैं । एक और बात पीर की पूजा में अनोखी है- पीर सभी बात की अनुमति अपने अर्ध्य देव शिरगुल महाराज से मांगता है और गुगाल के समय शिरगुल भी पीर की माडी में उपस्थित रहता है और उसकी भी पूजा अर्चना की जाती हैं बार वांचने पर शिरगुल महाराज में भी *'खैल'* आती है । पीर को अर्पण हेतु आटे के '*रोट*' बनाए जाते हैं । कुछ लोग सुबह के समय अपने बच्चों को माडी में ले जाते हैं और "छाटा' लगाते हैं ताकी बुरी नज़र या बुरे दृष्ट से बचाव हो सकें i पीर को साँपों और जहरीले कीड़ो से बचाव के लिए भी लोक्रिय माना जाता है । पीर की ध्वजा हेतु लाल कपड़ा लगाया जाता हैं । '*जोलौऊ*' (जल) देवता के लिए बिना नमक के रोट बनाए जाते हैं इसकी पूजा अर्चना की कोई पद्दति नहीं है और न ही कोई माली, ठाणी, भंडारी है और न ही जागरण आयोजित किया जाता है केवल ध्वजा स्वरुप लाल कपड़ा अर्पित किय जाता हैं । मनोकामना पूर्ण होने पर कुछ लोग 'खाडू' (मेढा) की बली भी देते हैं।

ठारी देवी की भी हर दिन पूजा अर्चना करने की कोइ विकसित पद्दति नहीं है और न ही स्तुति हेतु गायन शैली है केवल 'अर्ज" लगाकर माली में *'खैल'* आती है और लोग अपनी समस्या का निवारण पूछते हैं । मन्नत पुरी होने पर लोग गुड़ की भैली चढाते हैं और अगर मन्नत बड़ी हो तो लोग 'पाठी' भी चढाते हैं । ठारी की पूजा अर्चना के लिए विशाल यज्ञ

का आयोजन एक पीढ़ी में एक बार किया जाता हैं जिसे "शान्त" कहते है जिसमें "लिम्बोर नृत्य" के साथ शस्त्रों की पूजा की जाती है कोईलु देवता की पूजा अराधना के लिए कोई विशेष पद्दति नहीं है केवल जागरण दिया जाता है और जब श्रीगुल महाराज को चढ़ावा देते हैं तो उसी समय कोईलू को भी चावल या आटे को अर्पित किया जाता हैं । इसके अतिरिक्त चार-वीर, ख्वाजा, हेड़, आदि को संतुष्ट करने हेतु आटे के रोट अर्पित किये जाते हैं ।

vi) **देव समिति:** हर देवता के कार्यों और पूजा पद्दतियों को निष्पादित करने के लिए देव समितियां गठित रहती है चूंकि ये वंशानुगत होती हैं इसलिए इसे हर वर्ष गठित करने की आवश्यकता नहीं रहती है । सभी देव समितियों के अगवाल गाँव के नम्बरदार को माना जाता है लेकिन फिर भी महासू मंदिर के कार्यों का संचालन करने के लिए एक समिति गठित हैं जिसमें भणवाण भंडारी, परसेट, बिकाण, तिलकाण, पुरिआण, भागतेट आदि ठाणे और नातियाईक "पल्ग्यार" आदि सुनिश्चित है । इसके अतिरिक्त जिन में महासू के सभी '*माली*' (उतारीक, गुर) और पुजारी भी देव समिति में विद्यमान रहते हैं । किसी भी देव समिति में कोई महिला सम्मिलित नही हैं । इसी तरह शिरगुल, पीर और कुलाणा के मंदिर की भी देव समितियां हैं और ये समितियां मंदिर में या फिर गाँव में होने वाले देव कार्यों के सन्दर्भ में आवश्यक निर्देश या सुझाव देती हैं और निर्धारित देव परम्पराओं का पालन करने के लिए कदम उठाती हैं । किसी विवाद की स्थिति में भी ये देव समितियां ही अंतिम निर्या लेती हैं और इनका निर्णय अंतिम होता हैं बल्कि कई मामलों में देवता भी इनका परामर्श लेते हैं ।

vii) **उपचार व चिकित्सा :** घरेलु उपचार व चिकित्सा पद्दति को आज भी गाँव में प्राथमिकता दी जाती है । गाँव के अपने वैद्य हैं जो स्थनीय जडी-बूटियों की जानकारी रखते हैं और मुफ्त में मरीजों को देते हैं । बुखार होने पर जैसे हरड का सेवन, कडा, सर्दी जुकाम होने पर कचूर का काढ़ा, अपाच्य होने पर या फिर पेट में गैस बनने पर भी कचूर का लस्सी के साथ काढा बनाकर दिया जाता हैं । शरीर में छोटा घाव होने पर रक्त बहाव को रोकने के लिए बिछु बूटी या कटुवा पत्थर को पीस कर लगाया जाता है । बच्चों की आँख दुखने पर या निरंतर पीक पड़ने पर माँ का ताजा दूध डाला जाता हैं । सिर दर्द होने पर भी कचूर और गुड़ का काढ़ा पिलाया जाता है । शरीर की अन्दुरुनी चोटों के लिए दूध और हल्दी का मिश्रण दिया जाता हैं । पाँव मुड़ने या मासपेशियों में दर्द होने पर गुड़ और कच्ची हल्दी को साथ पीसकर कपडे की पट्टी द्वारा दर्द वाली जगह पर लगाया जाता है । दस्त या पेचिस लगने पर दही के साथ '*सूर*' (स्थानीय शराब) दी जाती हैं । दांतों और मसूड़ों की दर्द को ठीक करने के लिए अखरोट या टिम्बुर की दान्तुन की जाती हैं । पशुओं को चोट लगने पर या टांग मुड़ने पर या टूटने पर नौने की छाल लकड़ी की फटियों के साथ बाँधी जाती है । साँप या कुत्ते की काटने पर किसी जानकार व्यक्ति द्वारा पानी '*मतराणा*' करके पीड़ित को सात दिन तक ऐसा हर रोज़ पिलाया जाता है । छोटा बच्चा या यदि किसी पशु

या पालतू जानवर से डर जाए तो उस पशु या पालतू जानवर के शरीर से बाल निकाल कर बच्चे के सिर पर सात बार एक तरफ और दो बार उसके विपरीत घुमाकर जलती आग में डाले जाते हैं ताकी जलने से निकलने वाली गंध बच्चे की नाक तक पहुँच सके । यदि बच्चा पानी के पास किसी स्थिति में डरा हो तो उसे उसी नाले के पास आटे का रोट बनाकर पूजा जाता है । खांसी होने पर शहद के साथ अजवाइन या हरड पीस कर दिया जाता है । यदि घर में सांप घुस जाए तो उस स्थिति में उसे घर से बहार निकालने के लिए ऊनी वस्त्र जलाकर घर में धुंआ किया जाता है ताकी ऊन के जलने की गंध से सांप बहार निकल जाए । पालतू पशुओं के शरीर से परजीवियों के उपचार हेतु देवदार की जड़ों से तेल निकाल कर लगाया जाता हैं । फसलों में सडन रोग लगाने पर गो मूत्र का छिडकाव किया जाता हैं और सब्जी की बेलों में सडन रोग लगने पर पानी में सोने का गहना डालकर उस पानी जिसे *"सुन्वाणी"* सोने का कोई गहना धोकर एकत्र जल) कहते है, डाला जाता है । जोड़ों के दर्द को ठीक करने के लिए *'शिंगे'* लगवाई जाती है जिसमें .....पेड़ की फली को घर में रखे पशु के सींग को गर्म करके घुटनों में सेंक लगाया जाता है । पाँव में यदि काफी गहरा कांटा चुभा हो और सुई से न निकल रहा हो तो उस स्थिति में "फेगुड़े" का दूध और गुड लगाकर रात भर पट्टी बांधी जाती है और सुबह तक काँटा ऊपर नकल जाता हैं जो कि पीक के साथ बहार निकल जाता है ।

viii) **सामाजिक प्रथाएँ:** सामाजिक प्रथाएं ग्रामीण समाज का दर्पण हैं जिससे गाँव की सामाजिक अचार व्यवहार का पता चलता है । झकान्डो गाँव की 90% जनसंख्या मासाहारी हैं और हर घर में भातियोज के दिन बकरा काटा जाता है । इस गाँव में भी आल या बेडा सामाजिक इकाई का आधार है और सगोत्रीय विवाह स्थापित नहीं किये जाते हैं । लेकिन मामा की बेटी के साथ विवाह करना बुरा नहीं माना जाता था और दादी और माँ अपनी मायके की भतीजियों से अपने बेटों के विवाह स्थापित करने में प्राथमिकता देते थे हालांकि अब परिस्थितियाँ बदल चुकी है । समाज में कार्यों का वर्गीकरण भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है खोश सुरक्षा, भाट, डेटि देव कार्य, ढाकी बाज़गी, नाई और दर्जी का कार्य, बाड़ी बढ़ई का कार्य, चनाल मोची का कार्य, डूम टोकरी बनाने का कार्य, कोली मिस्त्री, काश्तकार और दर्जी, बुनकर और मृतक के समय लकड़ी एकत्र करने का कार्य करते थे । यदपि आधुनिकता और शिक्षा के प्रचार-प्रसार से व्यवसायों का लोप हुआ हैं। इस ग्रामीण परिवेश में बणिक या व्यापारी वर्ग सदैव ही गायब रहा है । गाँव का समाज सरल और जटिलता का सम्मिश्रण हैं । जहाँ एक और विभिन्न जातियों के लोग इस गाँव में परस्पर सौहार्द पूर्वक रहते हैं वहीं जातिगत पद्सोपान भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । यहाँ खश/खोश, भाट, ढाकी, बाड़ी, कोली, चनाल, डूम, देवा, डेटी आदि उप-जातियों के लोग निवास करते हैं । जातिगत पद्सोपान में भाट, खोश, देवा, डेटि को ऊपरी जातियां मानी जाती है । खोश और देवा के मध्य परस्पर रिश्तेदारी और वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं । डेटि और भाट के मध्य भी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हैं । मध्य क्रम में ढाकी, बाड़ी, कोली आदि जातियां आती है

। ढाकी और बाड़ी जाति के मध्य रिश्तेदारी और वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित है लेकिन कोली, डूम और चनाल जाति के लोगों के वैवाहिक सम्बन्ध केवल अपनी ही जाति में स्थापित है । डूम और चनाल जातिगत पद्सोपान में सबसे नीचे पायदान में आते हैं ।

ix) धारणाएँ, मान्यताएं एवं आस्थाएं: घर से बहार निकलते वक्त यदि किसी ने छींक मार दी तो इसे अशुभ माना जाता है और जाने वाला व्यक्ति कुछ देर के लिए बैठ जाता है । सांप द्वारा या बिल्ली द्वारा भी रास्ता काटने पर अशुभ माना जाता है । कुत्ते का रोना अशुभ माना जाता है और कहीं मातम के अपशगुन के संकेत माने जाते हैं । घर के सर्वोच्च बिंदु पर यदि कौवा बोलता है तो इसे भी अशुभ संकेत माना जाता हैं । यदि बकरी पिछली दो टांगो के सहारे बैठती है या फिर सूर्यास्त के बाद मुर्गा बांग देता है या फिर ओबरे में रात को बार बार पशु रंभाता है तो इसे भी अपशकुन माना जाता है । सपने में मरे हुए व्यक्ति का दिखना या फिर गाँव के किसी जीवित व्यक्ति के बारे में बुरा सपना देखना भी अशुभ माना जाता हैं । सूर्य और चन्द्र ग्रहण के समय तिल और माश को राहू के लिए अर्पित किया जाता हैं और साथ में एक जाप बोला जाता है-"छूड़ राहुआ छूड़, तीलो माशअ लोए जा खार, छूड़ राहुआ छूड़, तू जा साती समुदअ पार" अर्थात राहू सूर्य को छोड़ दे और इसके एवज में तू तिल और माश की एक खार (१६ किलोग्राम) ले जा और सात समुद्र के पार चला जा । ग्रहण के समय गर्भवती महिला को और छोटे बच्चे को घर से बहार निकलने की मनाही है । बने हुए खाने पर मिटटी की मुट्ठी राखी जाती है । सुतक के समय परिवार का कोइ भी सदस्य न तो देवालय जाता है और न ही अदरक के खेत में जाते हैं । सुटक वाले घर में कोइ भी पुरुष सदस्य १३ दिन तक प्रवेश नहीं करते हैं । सुबह चुल्हा जलाने से पहले गोमूत्र से लीपा जाता है और घर के हर कमरे के मध्य भाग में गोमूत्र का छिडकाव किया जाता है जिसे 'छड़ा' कहते हैं । रात को सोते हुए पश्चिम दिशा की ओर छत में बने रोशनदान को हमेशा ही बंद किया जाता है और ऐसा मानना है कि इस दिशा की ओर से बाण लगने का प्रकोप रहता हैं जो कभी असुरी शक्तियों द्वारा छोड़े गए हैं । हर माह की संक्रान्ति के दिन रात के भोजन से पहले घी का दीपक जलाया जाता हैं और यदि किसी के घर में "पापडा" होता है उसे जिमाया जाता है । घर की विवाहिता लड़कियां अपने मायके आकर "पाप" को जिमाने के लिए चावल का स्वादहीन भात बनाते हैं और प्रसाद के रूप में घी के साथ सबको वितरित किया जाता है । गाँव में दोष, लाठो, पाप, गणाद, मशाणीया, जिंगार, चौन्ले आदि में भी आस्था रखते हैं बंधुओं और पूर्वजों के दोषों के निवारण हेतु उतारीक या मालियों की सहयता ली जाती हैं । कई दोषों के निवारण हेतु बन्धु पक्षों को हरिद्वार तक या पावा तक जाते हैं । किसी की असमायिक मृत्यु होने पर या फिर आत्म हत्या के मामलों में मशाणीया बनाया जाता है जिसके माध्यम से उसकी आत्मा को विशेषज्ञता प्राप्त पंडित बुलाकर वार्तालाप करके असमायिक मृत्यु का कारण जानने का प्रयास करता है । किसी के साथ अन्याय करने पर मृत्यु पश्चात उसका पाप उत्पन होता है और घर में अन्याय करने वालों के खिलाफ परेशानी खड़ी करता हैं । अगर कोई बलशाली

व्यक्ति दुर्बल को वेबजह सताता है तो दुर्बल व्यक्ति बलशाली के विरूद्ध देवालय जा कर *'विचार कटता* है जिसे *'जिंगार'* कहते हैं और बलशाली को देव दोष लगने पर दुर्बल की सत्यता सिद्ध होती है । जब कोई व्यक्ति किसी परिवार के विरुद्ध गुप्त रूप से तांत्रिक की सहायता से षड्यंत्र रचता है और विरोधी घर के किसी कोने में तान्त्रिक अनुसार कुछ मूर्तियाँ या बुझे अंगारे दबाता है जिन्हें केवल विशेषज्ञता प्राप्त पंडित ही खोज सकते है उन्हें "गणाद' कहते हैं और इसका पता केवल तब चलता है जब घर में काफी नुक्सान होता है । किसी की बुरी नज़र उत्तराने के लिए लाल मिर्च को सिर पर फेरा जाता है और जलाते चूल्हे में फैंका जाता है । जब विवाहित लड़की अपने मायके में पहली बार अपने छोटे बच्चे को लाती है तो बच्चे की नानी "कुकुआ" के पत्ते पर आटा रख कर बच्चे पर घुमाया जाता है जिसे *"अवाँरना"* कहते हैं, फिर उसे पानी की घड़े के नीचे रखा जाता है । यदि पहला बच्चा बेटा है तो मामा की तरफ से डांगरा या बकरा दान में दिया जाता है । घर से किसी विशेष कार्य के लिए जाते समय महीला नगे सिर नहीं बैठती हैं और कपडे धोने और महीला द्वारा सिर के बाल धोने और कपडे धोने के लिए दिन सुनिश्चित होते हैं । मंगलवार और वीरवार के दिन यह कार्य वर्जित है । किसी कार्य विशेष को पूरा करने के लिए घर से बहार निकलने के लिए रविवार का दिन सबसे अच्छा माना जाता है लेकिन शोक प्रकट करने के लिए रविवार के दिन नहीं जाते हैं । किसी बात की सत्यता जानने के लिए या फिर चोरी की पुष्टि करने के लिए जिन्दाऊल, तिरींण, नीम, आदि विधियों का भी प्रचलन है जिसमें संदिग्ध से चावल के दाने मांग कर देवालय विचार काट कर चढ़ाया जाता हैं । नीम और तीरींण में भी दोनों पक्षों में सुलह का एक तरीका है इसमें एक व्यक्ति देवालय के मुख्य कक्ष के दरवाजे को खोलता है और दूसरा बंद करता है और यह विचार काटा जाता है कि दोषी व्यक्ति को देवता खुद दण्डित करेगा चाहे इसके लिए एक पीढ़ी ही क्यों न लगे । सावन के महीने में बैलों को हल के लिए नहीं जोता जाता है और विवाहिता पहले सावन के महीने अपने मायके में ही रहने का प्रचलन है । यदि किसी को अचानक शरीर में दर्द उठता है तो उस स्थिति में भी घर में बकरी या बकरा या फिर मेढ़ा पीड़ित के सिर पर घुमाया जाता है और निवारण हेतु विचार काटा जाता है कि यदि कोई बुरी दृष्टा या फिर 'लागीच" है तो देवता की पूछ करने तक सारी पीड़ा को ये बकरा या बकरी या फिर मेढ़ा हर लें और बाद में देवता से दोष हेतु निवारण का रास्ता पूछा जाएगा । किसी मृतक के दाह संस्कार पूर्ण होने पर वापिस लौटते हुए "चलो घर वापिस' शब्द बोलने अशुभ माने जाते हैं क्योंकि ये शब्द सुनकर मृतक की आत्मा वापिस आने की सम्भावना रहती है । कई घरों में एक गाय केवल देव के नाम से पाली जाती है जिसे "देओटे' कहते हैं और उसका दूध केवल पीने के लिए या दही बनाने के लिए इस्तेमाल होता है लस्सी या मक्खन घी बनाने के लिए नहीं । कई मामलों में एक खेत भी "देवड़ा" के रूप में छोड़ा जाता हैं यदि किसी प्रकार का दोष या क्लेश उस भूमी पर हो । संध्या के समय सोना और दरवाजे के बीच में बैठना भी अशुभ माना जाता है । आज भी लोग यहाँ छींग, बांजा,पाप, लागीच,

बाण, मात्री, नीम, लोटा-लूण, गणाद, चौंले, लाठो, डाग, डागुरा, दिश्टा, भाख, जिन्दाऊल, बंध जैसी लोक मान्यताओं में आस्था रखते हैं । बुरा सपना आना, सूर्य अस्त पश्चात मुर्गा द्वार बांग देने, कुते का रोना, बिल्ली का रास्ता काटना, घर से निकलते वक्त छींकना, छत पर कौवा बैठना, गाय द्वारा रात को रम्भाना, सूर्य पश्चात नाखून काटना आदि अपशकुन माने जाते हैं और इसका निराकरण हेतु पंडित से उपचार करवाया जाता है । लोग पंडित, पाबुच, भगनाण, माले, ऊतारीक, ठाने द्वारा बताए गए उपचार पर आस्था रखते हैं । जन्म के समय पाबूच लग्न राशी के हिसाब से नाम का अक्षर सुझाते हैं और तेरह दिन के बाद ही लडकी के मायके से सोइतो (खाना-पान घी, गुड, आदि)। । गाँव में देवता के मंदिर में दो बार नबद बजाई जाती है एक बार सांय 8 बजे और सुबह 4 बजे और ऐसी मान्यता है कि सायं की नबद के बाद से और सुबह के नबद तक देव अपने स्थान पर आराम करते हैं इसलिए उस समय बुरी शक्तियों का अधिक प्रभाव होता है और लोगों को अपने घरों से नहीं निकलना चाहिए ।

x) **महिलाओं की स्थिति:** महिलाओं की स्थिति सामाजिक रूप से काफी स्वतंत्र रही है । अपने पसंद का वर चुनने के लिए लडकी स्वतंत्र हैं लेकिन वर सजातीय हों । रिश्ता पक्का करने के लिए वर के पिता वधू के घर जा कर एक रुपया भेट करता है यदि लड़की उसे उठा लेती है तो रिश्ता स्वीकार्य समझा जाता हैं । स्त्री धन के रूप में विवाहिता के पास अपने थोड़े से जैवर-गहने होते हैं जो विवाह के समय उसे प्राप्त होते हैं चूँकि इस समाज में दहेज़ का प्रचलन कभी नहीं रहा । दहेज़ के नाम पर कांसे की थाली, गिलास, दराती और बछड़ी दान स्वरुप दी जाती थी यदपि आज कुछ स्वरुप बदल गया हैं । इस गाँव में बारात का प्रचलन लडकी की ओर से रहा हैं और विवाह के समय लड़की अपने साथ अपने गाँव के लोगों को साथ ले जाती हैं जिन्हें जाजडू कहते हैं और लड़की के ससुराल में इनका स्वागत बकरा काट कर किया जाता है । आज भी परस्पर सहमति से बिना किसी न्यायालय के हस्तक्षेप से वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद करना सरल और मान्य हैं जिसमे दोनों पक्षों के मौजिज लोग लिखत प्रदान कर विच्छेद को मान्यता देते हैं ।

xi) **काल गणना :** झकान्डो गाँव में भी काल गणना चन्द्रमा की स्थिति द्वारा निर्धारित होती है और एक वर्ष में ३६५ दिन होते हैं । एक महीने में ३० या ३१ दिन होते हैं एक वर्ष में बारह महीने होते हैं और पहला महीना चैत्र होता है । एक महीने में दो पखवाड़े और चार अठ्वाड़े होते हैं । बार से बार को अठवड़ा माना जाता हैं । एक दिन में आठ पहर माने जाते हैं-चार दिन के और चार रात के । सुबह दिन खुलने का समय *"बियाणु"* यानी शुक्र ग्रह के पूर्व दिशा में दिखने से माना जाता है और लगभग आठ बजे तक *"झीश"* (सुबह) दो पहर बीत जाने के बाद *"दोपार"* मतलब दिन का मध्यान, *"बियाल्क्को"* मतलब दिन ढलने का समय और *'सोंद"* का मतलब संध्या का समय माना जाता है ।

xii) **ग्रामीण न्याय व्यवस्था:** गाँव का सस्ता खुम्ब्ली न्याय आज भी विवाद को सुलझाने का सबसे लोकप्रिय तरीका है । दंडस्वरूप 6रू०, 12रू० 24रू० या अधिकतम 100रू० दोषी से वसूला जाता है । पञ्च लोग '*बिष्टाला' (फीस)* लेते हैं और खुम्ब्ली आयोजित करने से पहले गाँव के *ढेमेदार* (सुचना देने वाला) को 2रू० '*नल्सना'* (अग्रीम राशी) देना होता है । यदि सम्पूर्ण गाँव की खुम्ब्ली में ही दोषी व्यक्ति अपना गलती या गुनाह स्वीकार करें तो उस पर बकरा और गाँव का ठीला दंडस्वरूप लगाया जाता हैं यदि इसके बाद भी वह न माने तो उसे *बांजा* (सामाजिक बहिष्कार) लगाया जाता है । ग्रामीण न्याय व्यवस्था में नम्बरदार की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है इसके अलावा बेड़े या आल न्याय व्यवस्था को प्रभावित करते हैं । दंड राशी और दंड स्वरुप सदैव व्यक्ति की हैसियत अनुसार लगाया जाता है ।

लोक साहित्य

i) **लोक गाथाएँ:** हाटी लोक समाजलोक गाथाओं से समृद्ध है और यहाँ पर अनेक लोक गाथाएँ प्रचलित हैं जैसे-जुवाऊ-थोबौउ की वीर गाथा, झोकटीयाल की लोक गाथा, सिंगटोऊ-ठिंडाऊ की लोक गाथा, परोटिया, बीणी, कमरौउ-सेवागो, सिंगटोऊ-अन्ज्वाल आदि की हारूल आदि । इसके अतिरिक्त 'बीरसु' वीर गाथा है जिसमें बीरसु वीर के साहसिक कार्यों का वर्णन आता है जिसने अपने प्राणों की आहुति देकर महासू महाराज के अनाज एकत्र करने वाले पाथे को बचाने के लिए नदी में छलांग लगाई थी और अपनी जान गवांकर भी इसे नदी से बहार निकालने में कामयाबी पाई थी । 'राजा भरतहरी' में राजा के त्याग और सम्पर्पण का उल्लेख है इसी तरह से सियाहरण में राम और रावण के युद्ध का उल्लेख किया जाता है । राम-रावण का '*जोद्ध*' (युद्ध) कोंरू-पांडू का जोद्ध (कौरव-पांडव का युद्ध) के अतिरिक्त लोक गाथाओं में भींऊरी मार्मिक गाथा, सुबनी लोक गाथा, मनसो, चीता-गाज़ण आदि प्रचलित हैं जिन्हें सम्पूर्ण गिरीपार क्षेत्र के साथ-साथ इस गाँव में भी गाई जाती हैं ।

ii) **लोक नाट्य:** गाँव में बूढी दियाली के अवसर पर हास्यस्पद लोक नाटकों का प्रदर्शन होता है जिसमे व्यग्यात्मक रूप से अच्छ सन्देश देने की वकालत की जाती हैं । गाँव के कुछ युवा कलाकार स्थानीय वेश भूषा में कई नाटक प्रस्तुत करते हैं जिन्हें लोक गीतों के अंतरालों के मध्य पेश किया जाता हैं जिन्हें खेल्टू कहते हैं ।

गाँव में रामायण का भी लोक नाट्य के माध्यम से विमोचन किया जाता था इसमें लयबद्ध तरीके से रामायण के दोहे वांचे जाते हैं जैसे- रजा दशरथ कैकयी से कहते हैं: रानी -रानी सोती है कि जागती है ? तो कैकयी जबाब देती है-न तो सोती हूँ न जागती हूँ अपनी किस्मत पर रोती हूँ। कई अवसरों पर राजा हरिश्चन्द्र नाटक का

विमोचन भी किया जाता रहा हैं जिसमें राजा हरीशचन्द्र का सत्यता और ईमानदारी की मिसाल को दृश्य के माध्यम से लोगों तक पंहुचाई जाती रही । बूढी दियाली में प्रदर्शित किया जाने वाला चुरियाल्टू खेल, जो गिरिपार के केवल इसी गाँव में प्रदर्शित किया जाता हैं। इसमें दो व्यक्ति तवे से जाली अपने मुंह पर लगते है ताकी पहचान न हो सके और केवल निक्कर पहने हुई शरीर पर तवा और चिमटा बांधा जाता हैं कुछ बच्चों को एक किल्टे में सोने का नाटक करते हैं और उक्त दोनों व्यक्ति ढोल की थाप पर गाने के साथ उन बच्चों के कपडे और अन्य चीजों को चुराते हैं इस लिए इसे चुरीयालो कहते हैं । दियाली के अंतिम दिन बुडीयाचु आते थे और '*बुडाह*' नृत्य किया जाता था ।

iii) **लोक गीत:** लोक गीतों में कई प्रकार के गीत शामिल हैं जैसे-प्रेम गीत, व्यंग्यात्मक गीत, वीर गीत, विरह गीत और मार्मिक गीत आदि । गंगी और भाभी प्रेमरस भरे गीत है जिन्हें लड़के और लड़कियां अक्सर समूह में गाते हैं और एक दूसरे को अपनी भावनाएं व्यक्त करने का माध्यम भी रहता है । झूरी (झोरे) एक प्रकार का व्यंगात्मक गीत है जिसमें गायक अक्क्सर मुजरे में गाता हैं । इसमे नवजवानो की माली हालत पर टीका टिप्पणी की जाती हैं और बुजुर्गों के शान और अच्छे समय का ज़िक्र किया जाता है । लामण और झांगे विरह को दर्शाने वाले लोक गीत हैं जिसमें गाँव में आये मेहमानो और विवाह के बाद वापिस जाने वाले जाजडुओं के विछड़ने के अवसर पर गाये जाते हैं इसमे एक तरफ लडके और दूसरी तरफ से लड़कियां गाती हैं । "छोड़े' हास्यस्पद लोक गीत हैं जिसमें पुरुष-महिला एक दुसरे के विरुद्ध टीका-टिप्पणी करते हैं । इसके अतिरिक्त कई बार गाँव में असमयिक होने वाले घटनाओं को भी लोक गीतों में पिरोया जाता है ।

बूढी दियाली की अमावस्या की रात को मशाल के साथ गाए जाने वाले गीत फूहड़ता से भरे होते हैं और केवल पुरुष ही इसमे सम्मिलित होते हैं । इसका एक उद्देश्य पौरुषत्व को जगाना है और दूसरा उद्देश्य नवम्बर की ठंडी रात्रि में पुरुषों को घर से बहार निकलने के लिए वाध्य करने का एक ढंग है । लोक गीतों में "सियारहण" भी मशहूर हैं जिसे दो अलग अलग शैलियों में अक्सर रात खुलने के समय गाया जाता है मुजरे में और तांद में भी । छोबकू एक और लोकप्रिय हास्यस्पद गीत गीत है जिसमें गायक गाँव के युवक-युवतियों पर उनकी काम न करने की मानसिकता पर कटाक्ष करते हुए सिमटती खेती और पशु धन की व्यथा बताता है ।

iv) **नृत्य एवं नाटियां ::** बुडाह नृत्य सबसे प्राचीन लोक नृत्य माना जाता है जिसे बूढी दियाली के जोंदोई की शाम को बुडियाचु द्वारा प्रस्तुत किया जाता था जिसमें 'चौलणे' पहन कर बूढा-बूढी के रूप में हुड़क की थाप पर नृत्य करते थे यदपि अब इसे प्रस्तुत नही किया जाता है । इसकी प्रमुख पंक्ति ये थी:

बूडो भाई कैथे शो आओ... बूडो भाई कैथे शो आओ ।
बूडो भाई नदी पारो शो आओ.. बूडो भाई नदी पारो शो आओ ॥

(अर्थात बूढ़ा जोड़ा कहाँ से आया और कहाँ जाएगा ...बूढा जोड़ा नदी पार से आया और वापिस नदी पार ही जाएगा ।)

मजूरा नृत्य अक्सर बैठ कर गाये जाने वाले गाने पर किया जाता है और दो या तीन जोड़ी केवल पुरुष गीतकार बैठते हैं बीच में खाले जगह छोड़ी जाती हैं जहाँ नृत्य करने वाले नाच सके । कई बार नृत्य करने वाला व्यक्ति खुद ही गीत गाता है और बैठे हुए गायक उस व्यक्ति के पीछे गीत के अंतरों को दोहराते हैं । मुजरे में कई बार युगल में भे नृत्य होता हैं जिसमें पति -पत्नी नृत्य करते हैं या फिर परिवार के सभी सदस्य भी एक साथ नृत्य करते हैं जिसमें ससुर-बहू, सास-दामाद, पिता-बेटी, भाभी-देवर आदि सम्मिलित होते है यानी किसी प्रकार की बंदिश नहीं होती है । मुजरे में हारुल गायन पर कभी-कभी तलवार और ढाल से भी नृत्य किया जाता है जिसमें गाँव का बुजुर्ग अपनी कला बाजियां दिखता हैं । हारुल नृत्य में एक से ज्यादा लोग भी एक साथ नाचते हैं । रासा नृत्य हारुल या वीर गाथा पर ही किया जाने वाला नृत्य है जिसमें एक-दूसरे की बाजुएँ पीछे की तरफ पकड़ सटक कर खड़े होते हैं और ढोल की थाप पर कदम से कदम मिलाकर चलते हैं । कई बार आगे चलने वाला व्यक्ति हाथ में डांगरा या तलवार लेकर नृत्य पंक्ति का नेतृत्व करता है । इसमे अक्सर पुरुष ही ज्यादा भाग लेते हैं लेकिन वर्तमान में महिलाएं भी सम्मिलित होती हैं लेकिन गायन केवल पुरुष द्वारा ही किया जाता हैं । तांद नृत्य आम लोक गीतों पर किया जाने वाला पंक्ति का नृत्य है जिसमें समिमिलित होने वाले लोग एक दूसरे की बाजुएँ आगे की तरफ पकड़कर ढोल की थाप पर कदम से कदम मिलाकर चलते हैं । इसमे अक्सर युवक एक अलग तांद और युवतियां अलग तांद बनाते हैं और कदम की मुश्किल चाल से एक दुसरे को मात देने का प्रयास करते हैं । “मन गी” एक ऐसा नृत्य हैं जिसे केवल ढोल, दुमानो, नगाड़े, ताली और करनाल की तालों और धुनों पर किया जाता हैं इसमें समूह में सभी उपस्थित लोगों द्वारा एक साथ थिरक कर नृत्य किया जाता है और किसी प्रकार की गायकी का इस्तेमाल नहीं होता है । इसे अक्सर या तो पर्व या उत्सव की समाप्ति पर किया जाता है और बार बार दुहराया जाता है कि-“सदा रो चेई एशो ओ” अर्थात हमेशा ऐसा संगीतमय रहना चाहिए । विरसु नृत्य अक्सर एड़ी की थाप पर किया जाने वाला वीर नृत्य हैं जिसमें हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले चार-पांच व्यक्ति एक साथ नाचते हैं और कमरे में उपस्थित अन्य पुरुष भी एडी की थाप साथ लगाते हैं और ऐसा लगता है मानो पूरा कमरा सामान सहित नृत्य रत हो रहा हो । कई बार इस नृत्य में “खैल’ भी आती हैं । ‘घुन्डिया रासो’ एक अलग प्रकार का ही नृत्य हैं जिसमें दो जोड़ी नाचने वाले व्यक्ति एक दुसरे के कमर पर टाँगे फँसा कर साथ नाचते हैं । इसके अतिरिक्त ‘लिम्बर नृत्य’ केवल ठारी की शांत के अवसर पर या महासू के जागरण पर किया जाता हैं और इसमें केवल पुरुष ही सम्मिलित होते हैं और हाथों में शस्त्र होते है थोड़े-थोड़े अंतराल बाद देव कांडी वाची जाती हैं और उस समय नृत्य करने वाले सभी लोग शांत होकर

सुनते हैं और अंतिम शब्द के साथ उछल कर "लिम्बीरा" शब्द बोलकर नृत्य करते हैं और ये शब्द ही बार बार दुहराया जाता है और नृत्य करते हुए पुरे सांझे प्रांगण का फेरा दिया जाता है । "होजुरा" नृत्य केवल बिशु में किया जाता है जिसमें एक जलुसू के रूप में ठारी देवी के प्रांगण से गाँव के पुरुष निकल कर ढोल और दुमानो की थाप पर "होजुरा..होजुरा" बोलते हुए नाचते है एक व्यक्ति जिसकी आवाज दमदार और भारी हो फूहड़ शब्दों में कांडी बोलता है जिसे 'जीरू' कहते हैं । मौण में किया जाने वाला नृत्य लिम्बर और होजुरा नृत्य से भिन्न होता था और इसमे केवल फुहड़ता का ही इस्तेमाल होता था लेकिन अब मौण पर्व ही बंद कर दिया है ।

नाटी के भी कई प्रकार इस गाँव में लोकप्रिय है जैसे-एकल नाटी, युगल नाटी और सामूहिक नाटी आदि । एकल नाटी या तो मुजरे में लगाई जाती है जिसमें नाचने वाला अपनी पसंद का गीत गवाकर नाचता है और एक के बाद एक नटार मजरे के मध्य आकर बारी बारी से नाचते हैं । युगुल में दो पुरुष या लड़कियां या महिलाएं एक साथ नाचते हैं कभी-कभी एक-लड़का और एक लड़की भी एक साथ नाचते हैं । समूह नाटी में शौकीन लोग एक साथ एक ही गाने में नाचते हैं और अपनी-अपनी मुद्राओं में नाटी का लुत्फ़ उठाते हैं । कई अवसरों पर दोनों हाथो में थालियाँ लेकर भी नाटी की जाती है जिसे थाली नृत्य कहते हैं । नाटियों में बाजुओं, कमर, कन्धों के साथ-साथ पाँव की गति में सामजस्य आवश्यक है जबकी रासा, तांद में क़दमों की गति में सामजस्य बिठाना जरूरी है लेकिन लिम्बर, होजुरा में केवल शरीर के कमर के उपरी भाग की गति होती है ।

v) **लोक कथाएँ :** लोक कथाओं में "सुकसेली" की हास्यस्पद और व्यंगात्मक कथाएँ मक्की के दाने अलग करते हुए सुनाई जाती हैं जिसमें एक साथ दो तीन घरों के लोग पहले एक घर की मक्की से दाने अलग करने का काम समाप्त करते हैं फिर दुसरे और फिर तीसरे घर का काम खत्म करते हैं । इस दौरान कार्य को दिलचस्प बाबाने के लिए लोक कथाएँ सुनाई जाती हैं । सुकसेली एक प्रकार का पहाडी शैख़चिली का चरित्र वर्णन हैं जिसमें उसकी तेज और हाजिर जबाब योग्यता को सुनाया जाता है । पहाड़ी शैली में रामायण और महाभारत के छोटे-छोटे दृश्यों में राम, लक्ष्मण, हनुमान, सीता, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, श्री कृष्ण आदि के सन्दर्भ में उद्धरण लोक कथाओं के माध्यम से घरों में सुनाएं जाते हैं ।

vi) **लोक कहावतें व पहेलियाँ** : लोक कहावतों के सन्दर्भ में यह गाँव काफी समृद्ध है जिन्हें "ओनाणे" कहते हैं और ये जहाँ अनुभवों और वास्तविकता के समीप होती है वहीं नई पीढ़ी के लिए शिक्षा लेने का भी माध्यम हैं । यदपि ये लोक कहावतें किसी विशेष अवसर पर नही बोली जाती है बल्कि बातों बातों में सीख देने या वास्तविक स्थिति बयाँ करने के लिए प्रयुक्त की जाती है । कुछ प्रचलित लोक कहावतें इस प्रकार है :

१. "बूढा खाला जूण, तअ कमाला कुण" अर्थात यदि बुढ़ापे में जूण भर खाओगे तो फिर कमाएगा कौन ।

२. “खाल ने कोरी खोणीअ, टिम्बे ने कोरी चिणीअ“ अर्थात खाले और चोटियाँ कुदरत की देन हैं ।

३. “जूणजी कोरी आणीअ, तेंखे पड़ो देणी बाणीअ” अर्थात जिसे वियाह कर लाया जाता है उसे कमा कर देना पड़ता है ।

४. “भाइए भाए पाला, दाइए दाए गाला” अवसर पड़ने पर भाई भाई को पालता है जबकी बहार वाला गिराने का अवसर नहीं चुकता है ।

५. “दाई की मिश, माश ने आथी तअ कुल्थअ पीश” अर्थात बिरादरी के समक्ष दिखने के लिए असली की जगह नकली का इस्तेमाल जायज़ है ।

६. “पोइसे वाला टकटका, बिना पोइसे जकजका” पैसे वाला सदैव ही फुर्ती में दिखता हैं और बिना पैसे वाला सुस्त नज़र आता है ।

७. “जे तअ पूजी तबे पाथरअ के बी देओ, जे ने मांदे, तबे भीते के लेओ” अर्थात यदि आस्था है तो पत्थर में भी देवता हैं नहीं है तो मकान के पत्थर के समान है ।

८. “सुते खे कालजो भेटदो ने” अर्थात सोए हुए को लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती ।

९. “राजा के माँ खे डाग कूँण बोलदा” अर्थात बलशाली को कोई गाली देने की हिम्मत नहीं करता

१०. “पाथा पाया भअरे, शीअ खे गोआ डअरे” अर्थात थोड़े अंतर से चूक जाना ।

लोक पहेलियाँ की बात करें तो इस गाँव में भी लोक पहेलियों का काफी प्रचलन है और अक्सर सामूहिक कार्यों जैसे ऊन कातते हुए और मक्की के दाने अलग करते हुए पहेलिय बुझाई जाती है जिन्हें बुझावणे कहते हैं:

१. “आर बी झुला पार बी झुला, बीचअ ठाईं सियांर जिया फूला” ....दही से मक्खन बनाना

२. “कालू ऊटा पाचअ खे, पाचअ गोंए आए कालू ने आई”... तवा रोटी

३. “ऐबी इथे एबी नदी पार” आँखें

४. “आमे बी खाव से बी खाव”....कुकुआ (बिच्छु बूटी

५. “लाणेआ मोइलाणेआ ओबरा घेड़ाणा, पाँच ऊटे थागदे दू ए आणा”....नाक साफ़ करना

६. “उरो बी ठुरु पुरो बी ठुरु, ठुरु मेरो नाव, पोएने मैरे टूरुओटे, कथे मुखे ठाँव”. ऊन कातने की तकली

७. एकी गाँव दे आग लागे, दूजे गाँव दा कुआं, चीज़े गाँव दो बादल गुडे, चौऊथे गाँव दा धुंआ... चीलम (हुक्का)

८. “काले हांडे, कालो ही भात, सीऊ हांडीए, घुटा घाट” -फेगुड़ा के पके दाने

९. “इथे शा चाला आसवी भागा, बिना फुल्टूए झोमका लागा”...तिरमल का फल

अर्थव्यवस्था

i) **आर्थिक संसाधन:** ग्रामीण पृष्ठ भूमी पर बसे हाटी के आर्थिक संसाधन अत्यंत सीमित और बहुपियोगी हैं । कृषी ग्राम अर्थव्यवस्था की रीढ़ है और अपनी जरूरतों के ९०% संसाधन खेती और पशु पालन से पूरे होते हैं । ९०% मकान आज भी लकड़ी और पत्थर से बने हैं जिसके लिए इमारती लकड़ी साथ लगते जंगल से इमारती लकड़ी वितरण अधिनियम के तहत प्ररप्त होती है और पत्थर माकूल मात्रा में हर जगह उपलब्ध है । खाद्य अनाजों की खरीद की आवश्यकता नहीं रहती हैं क्योंकि प्रचुर मात्रा में किसान अपने खेतों में उगा लेते हैं । कृषि में नकदी फसलें जैसे-अदरक, लाल मिर्च, कलिजीरी, आदि बीजते हैं और वेर्ष भर के लिए अपने गुजारे-भत्ते के लिए आमदनी प्राप्त करते हैं । कई घरों के पास मक्की, गेंहू, चौलाई आदि फसले भी अपनी आवश्यकता से अधिक होती हैं जिन्हें बेच कर आय प्राप्त करते हैं । वर्तमान में टमाटर, गौभी, आलू, कचालू, बीन, शिमला मिर्च, मटर आदि हरी सब्जियों से भी किसान अच्छी आय प्राप्त कर रहे हैं और अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत कर रहे हैं । ऊँचाई वाले क्षेत्र जैसे भागनाड़ी, घाला में सेब के बगीचे भी तैयार किये जा रहे हैं लेकिन अभी ये बहुत आरम्भिक अवस्था में है और इसमें चुनिदा किसान ही हाथ आजमा रहे हैं । इस गाँव की अर्थव्यस्था में दूसरा महत्वपूर्ण अवयव हैं पशु पालन जो कृषि के पश्चात किसानों की अर्थव्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं । सम्पूर्ण कृषि कार्य पशुओं पर आधारित हैं चाहे खेत में हल लगाने का काम हो या फिर खेतों के लिए गोबर खाद की व्यवस्था हो या फिर भार ढोने के लिए प्रयों में लाये जाने वाले पशु हों या फिर मीट और मास प्राप्त करने या फिर दूध, घी, लस्सी आदि प्राप्त करना हो, सब पालतू पशुओं से ही प्राप्त किया जाता हैं । किसान इन पालतू पशुओं से अतिरिक्त उत्पाद तैयार कर जैसे घी आदि बेचकर घर की आधी जरूरतें पूरी करते हैं । कई किसान पशुओं का विक्रय करके अच्छी खासी रकम साल भर इकठ्ठा करने में सफल होते हैं जिसमें विशेष कर बकरियां और भेड़े और माघी के त्यौहार के लिए बकरों को पालकर बेचा जाता हैं । एक और कटु सत्य यह भी है कि आज की बढती चकाचौंध वाली दुनिया और बाज़ार ने इस गाँव के किसानों को भी ललायित किया हैं और खेती तथा पशु धन से पुरे वर्ष भर का व्यय पूरा होना सम्भव नहीं होता है इसलिए आज भी गाँव के लगभग हर घर से लोग दिहाड़ी, मजदूरी करने के लिए शिमला, सोलन, चकराता, जुब्बल,नाहन, पांवटा, रोहडू और मंसूरी जाते हैं । आय बढाने के उद्देश्य से लोगों ने बेमैसमी सब्जियां और नकदी फसलों का उत्पादन प्रारम्भ तो किया है लेकिन सिंचाई की उपयुक्त व्यवस्था न होने से इसका पूरा लाभ नहीं मिल पाता हैं । सरकारी नौकरी पेशे में हाटियों की प्रतिशतता बहुतकम है जो कुछ लोग हैं वो या तो सामान्य सैनिक, लोक निर्माण विभाग में बेलदार, अन्य विभागों में सेवादार, चौकीदार, टी० जी० टी०, जेबीटी, प्राध्यापक व आचार्य आदि तक सीमित है ।

ii) **कृषि:** ९८% लोगो का प्रमुख व्यवसाय केवल कृषि है और वो भी परम्परागत मानसून आधारित कृषि । गाँव का किसान सीढ़ीनुमा खेत में बैल की जोड़ी और अपने बनाई हुए

लकड़ी के हल से परम्परागत खेती करता हैं यहाँ न तो टिलर और नहीं ट्रेक्टर का प्रचलन है । गेहूं से भूसा अलग करने के लिए गेहूं को खलियान जिसे "खला" कहते हैं, में मूठ को काटकर पहले सुखाया जाता है और फिर बैल को खलिहान के मध्य निश्चित की गई धूरी जिसे 'धोरा' कहते हैं, में ढीली रस्सी बांधकर हर बैल के गर्दन से बांधी जाती हैं और सारे बैल एक साथ वृताकार घुमाएं जाते हैं इसे "दाऊँड" कहते हैं । लगभग तीन या चार घंटे तक कटी गेंहूं की सुखी फसल पर बैल को घुमाने के बाद गेहूं भूसे से अलग हो जाते है और बाद में उन्हें हवा की सहायता से "शुपे" का प्रयोग करके भूसा अलग किया जाता हैं और गेहूं एक ढेर के रूप में एकत्र होते हैं । लेकिन गेंहू से भूसा अलग करने के लिए अब हर गाँव में एक-एक थ्रेशर जरूर उपलब्ध हैं। गाँव में फसलों की सिंचाई हेतु कुहल का प्रयोग होता है लेकिन ये केवल देवनल या फिर ठेलेणु में ही उपलब्ध है बाकी जगह केवल मानसून आधारित कृषि ही होती है । कुछ खाले के साथ लगते भागों में धान की खेती क्यारों में की जाती है जैसे-क्यारी खाले में परसेट, नाईलुआ, तिलकाण, बुडाईक, डेटी के क्यार आदि जहाँ माकूल पानी है और क्यार में धान रोपणे से लेकर पकने तक पानी की उपलब्धता रहती है । धान को पकाने के बाद तिरछे रखे बड़े सपाट पत्थर पर पटक कर झाड़ा जाता हैं और फिर "कुटटाली या घटाली" में भरा जाता हैं । लकड़ी का हल, शमाई, गाण, नासे, फाला, गुन्ने, कोशले, मोईडा, बास, जुतरो, छाबो, दाओं, नियाण, छेणा, आदि कृषि कार्य में उपयोग होने वाले औजार है जिनका प्रबंध हर घर में खुद किया जाता है । कृषि कार्य में सभी जातियों और समुदायों के लोग संलग्न हैं ।

क्र० सं०	पकी फसल का नाम	भूसे से दाना अलग करने की विधि
१	मक्की	खोलय (हाथ से दाना अलग करना)
२	गेहूं	गायअ (बैल की सहायता से खलिहान में)
३	धान	झाडेअ (सपाट पत्थर पर झाड कर)
४	कोदा	गायअ (बैल की सहायता से खलिहान में)
५	चौलाए	गायअ (बैल की सहायता से खलिहान में)
७	कावाणे	मांडेअ (एक सप्ताह ढेरी में रख कर फिर पाँव से मसल कर)
८	चिणोए	मांडेअ (एक सप्ताह ढेरी में रख कर फिर पाँव से मसल कर)
९	शांवक	मांडेअ(एक सप्ताह ढेरी में रख कर फिर पाँव से मसल कर)
१०	भोट	गायअ,पीटीअ (बैल की सहायता से खलिहान मेंया फिर डंडे से पीटकर)
११	माश	गायअ, पीटीअ (बैल की सहायता से खलिहान मेंया फिर डंडे से पीटकर)
१२	मसूर	पीटीअ (डंडे से पीटकर)
१३	कुल्थी	गायअ, पीटीअ (बैल की सहायता से खलिहान मेंया फिर डंडे से पीटकर)

१४	लोबिया	खोलय खोलय (हाथ से दाना अलग करना)
१५	बीन	खोलय खोलय (हाथ से दाना अलग करना)
१६	तिल	झाडेअ (घीले की नीचे चादर बिछाकर तील की पकी हुई डंडिया घीले के अन्दर झाड़ी जाती हैं और केवल तील के दाने चादर पर गिरते हैं)

iii) **भूमि स्वामित्व:** किसान खुद अपनी भूमी का स्वामी हैं और उसके पास भूमी संबंधी सारे अधिकार सुरक्षित हैं अर्थात वह भूमी को बेच सकता हैं और खरीद सकता हैं लेकिन कृषि भूमी को केवल कृषि उपयोग के लिए राज्य के लोगों को ही बेची जा सकती हैं बाहरी राज्यों के लोग नहीं खरीद सकते हैं । भूमी को किस्म के आधार पर विभाजित किया गे है जैसे- अब्बल, दोएम, दोएम अब्बल, ओबड़, बंजर, बंजर कादीम आदि । अब्बल भूमी वो भूमी हैं जिसमें कूहल आदि लगाती हैं और इस प्रकार की भूमी से सरकार आज भी मालगुजारी वसूलती हैं । श्री गुलाब सिह मत्याण का परिवार आज भी १२०रू प्रति छह माह मालगुजारी प्रदान करता हैं । श्री दलीप सिंह बिकाण का परिवार आज भी १५० रू० प्रति छह माह मालगुजारी प्रदान करते है । जोतों का आकार अत्यंत छोटा हैं और केवल बैल की जोडी ही सीढ़ीनुमा खेतों को जोतने के लिए उपयोग की जाती हैं । विरला खेत ही एक बीघा से अधिक होता हैं ज्यादर खेत ५ विश्वा से ८ विश्वा के मध्य हैं । अनुसूचित जनजाति के भूमिहीनों के लिए भी सरकार द्वारा पाँच विघा जमीन मुफ्त प्रदान की गयी हैं जिसका उपयोग ये भूमिहीन किसान केवल अपने लिए कर सकते हैं इस भूमी को बेचा नहीं जा सकता और न ही खरीदा जा सकता हैं । सरकार ने भुमेहीनो के लिए माकन बनाने केलिए भी मुफ्त तीन विश्वा भूमी प्रदान की हैं जिस पर वे अपने मकान बना सके । स्वामित्व वाली कृषी भूमी के अतिरिक्त गाँव के पास शामलात भूमी भी उपलब्ध हैं जिसमें पशु चराका, घासिण आदि हैं । शामलात भूमी पर लोगों ने अपने कब्जे स्थापित किए हैं जिसका राजस्व विभाग के द्वारा चक्वंदी के समय वितरण किया हैं और अब केवल पशु चारागाह वाले क्षेत्र ही शामलात में पड़ते हैं । इस गाँव की सम्पूर्ण क्षेत्र का ४०% भाग वन भाग के अंतर्गत आता हैं लेकिन वनाच्छादित क्षेत्र केवल १०% ही हैं जिस पर देवदार के आरक्षित वन हैं । झकांडो, भटोडी, नाला, कुने, क्कोली, देवनल आदि उप गाँव में वन विभाग का अधिक भाग हैं ।

iv) **पशुपालन:** इस गाँव में पशुपालन किसान केवल कृषि कार्य और अपने सीमित उपयोग हेतु ही करता हैं । हर घर में घरेलू नस्ल की दो-तीन छोटी गाय पालने का प्रचलन है क्योंकि पहाड़ी और चट्टानी क्षेत्र होने से यहाँ प्रचुर मात्रा में चारे का अभाव रहता है और खुले चारागाह भी उपलब्ध नहीं हैं । खेतो में हल चलाने के उद्देश्य से घरेलु नस्ल की बैल की एक जोड़ी हर किसान परिवारके घर पाली जाती है लेकिन बड़े किसानो के घरों में दो या तीन जोड़ी बैल भी पाले जाते हैं । गाय के लिए चारे का प्रबंध करना महिलाओं का काम माना जाता हैं और दूध निकालना, दही, लस्सी, मक्खन, घी, बनाने

का काम अधिकतर महिलाएं ही करती हैं । गाय के गोबर को "ओबरे" से बहार निकाल कर एक ढेर में एकत्र किया जाता हैं जिसे "गोबराश" कहते हैं, और बाद में ये गोबर केंचुआ खाद में तब्दील होकर खेतों में घीले, शेकुडी, शेकोड़ो और धावनी के माध्यम से ढोया जाता है । इसके अतिरिक्त बकरियां, भेड़े भी पालते हैं लेकिन ये कार्य केवल चुनिन्दा परिवार ही करते हैं क्योंकि एक तो इसके लिए अधिक आदमियों की आवश्यकता होती हैं और दुसरे इन्हें चरराने के लिए खुले चरागाह और अधिक पत्तियों वाले जंगलों की भी जरूरत है जो कि इस गाँव में काफी कम हैं जिनके पास अपने बाण के जंगल है या फिर अपने चारागाह है केवल वे ही परिवार इन्हें पालते हैं । ये लोग भी बरसात के मौसम में इन्हें या तो जौनसार के "ओथियो" या फिर धम्बराऊ के जंगल में चुगाने ले जाते हैं ताकि अपने छोटे से चारागाह को वर्ष के बाकी दिनों के लिए बचाया जा सकें । इसके एवज में बईएले के तिरनोऊ और धम्बराऊ को या तो पैसे देते हैं १२०/रू० प्रति बकरी तीन माह की दर से या फिर एक बकरा देते हैं जिसे "बुणकरा" कहते हैं । बैल के लिए ये दर १५०/रू प्रति बैल प्रति तीन माह वसूला जाता हैं । बकरियां और भेड़े पालने से हर साल माँघ के महीने में त्यौहार् के लिए बकरा या मेढ़ा भी प्राप्त होता है और वर्ष भर बेचकर कुछ आमदनी भी होती है साथ ही खेतों में उपजाउपन बनाए रखने के लिए केंचुआ खाद भी प्राप्त होती है । कई बड़े सयुक्त परिवारों में भैंस पालने का भी प्रचलन प्रारम्भ हुआ है लेकिन चनिंदा परिवार ही इसमे सक्षम है । चारे के रूप में घास, भूसा, गैहोवान, कुक्डान, ओलाए आदि गाय, भैस और बैल को खिलाया जाता हैं जिनके पास पर्याप्त बान के जंगल हैं वे लोग बाण के पत्ते भी चारे के रूप में डालते हैं । बूढी दियाली की भिऊरी के दिन के बाद १५ गेट फाल्गुन तक बैल, गाय, भैंस आदि दिन भर धूप में बांधे जाते है जिसे "थाची" कहते हैं दिन भर यहीं चारा खिलाया जाता है । केवल पानी पिलाने के लिए "दांव" से खोल कर नाले तक ले जाया जाता है । दुधारू पशुओं के लिए अलग से दाना दिया जाता है जिसे लाम्बड और दालो कहते हैं जिसमें गाय के लिए आग से मोटे अनाज पिसाए जाते हैं और बकरी के लिए भोट, जौ या मक्की दी जाती हैं । भातियोज़ त्यौहार के लिए पाले जाने वाले बकरे या खाडू के लिए दिया जाने वाला अनाज "कुडका" और पीसे आटे का कच्चा गोला "पीन" कहा जाता हैं और बाड़े में ही इन्हें अलग से साल भर पाला जाता है ।

v) **ग्राम उद्योग-(कताई, बुनाई, लोह-औजार, आभूषण-निर्माण, काष्ठ-उपकरण इत्यादि):** कृषि के अतिरिक्त बुनकर, बढ़ई, मिस्त्री, लुहार, दर्जी, नाई, दस्तकार जैसे व्यवसाय का भी प्रचलन इस रहा है । यदपि इन व्यवसायों से ग्रामीण समाज में केवल जीवन निर्वाह हेतु आय प्राप्ति होती है और वो भी वस्तु विनिमय के रूप में । दस्तकारों द्वारा बांस, तुंअग और निगाल का उपयोग कर सुन्दर घीलें, शेकडी, डाला, शेकडो, छोईलो, शुपो, धावने आदि बनाये जाते हैं जिसमे डूम समुदाय को दक्षता प्राप्त है । देवनल के डूम पूरे गाँव के लिए उपरोक्त वस्तुएं बनाते हैं और इसके एवज में हर घर से "बुणाई" अनाज के रूप

में प्रदान की जाती है । धातु में तिलियाने, चाल्णों, कुद्वाने, शुपो आदि भी निर्मित किये जाते हैं जिसका निर्माण ठठेरे या कशेरे द्वारा किया जाता है । बढ़ई द्वारा हान्ड़ो, चरखी, नासी, हल, शमाई, गाण, मोईड़ा आदि बनाए जाते हैं । बढ़ई का काम या तो कलयाण परिवार करता है या फिर धारवा में अलग बढ़ई के काम करने वाले बढ़ई समुदाय के दो-तीन घर हैं जो लकड़ी के मकान बनाने के काम में दक्ष हैं । वाद्य यंत्रों में मढ़ाई का काम खुद ढाकी समुदाय करता हैं इसके लिए बकरे की खाल का इस्तेमाल किया जाता हैं । ढोल, दुमानो, खंजरी आदि मढे जाते है और इनका मेहनताना हर घर से अनाज के रूप में फसल आने के समय दिया जाता हैं । गाँव का ढाकी ही नाई का काम भी करता है और हर संक्रान्ति के दिन घर-घर जा कर बूढ़े, बुजुर्गों की हजामत करता है । इसके बदले में उसे आटे का "सोला" प्रदान किया जाता हैं यदपि अब ये प्रचलन कम हुआ है क्योंकि अब हर घर में लोग खुद शेविंग का सामान रखते हैं । मिस्त्री पत्थर के काम में दक्ष माने जाते है और कोली समाज से ज्यादा लोग मिस्त्री का काम करते हैं । दीवार का काम या फिर मकान में पत्थर का काम गाँव समाज में ये लोग ही करते है और इसके बदले अनाज नहीं बल्कि दिहाड़ी-मजदूरी दी जाती हैं । घरों के ढलवां छतों पर स्लेट की छत डालना या फिर उसकी मुरम्मत करना भी मिस्त्री का ही काम होता हैं । हर घर में ऊन की तक्क्ली और छोईलो रखा होता है और पुरुष शाम के समय ऊन कातते है । वारिश के मौसम के समय हर घर में शैल की "पागोई" और "दाँव" बनाये जाते हैं । कृषि उपकरण हेतु लोहार से दराती, दात, पचियाड़ो, कातला, चाक़ू, चिमटा, धौन्टू, दाच्टू, फाला, कुराड़े, वर्ष भर के लिए बनवाए जाते हैं चूँकि इस गाँव में लुहार नहीं रहते हैं इसलिए सांगना-स्तान, राउर, नैनिधार से लोहार बुलाकर सभी गाँव के लोग एक जगह सुनिश्चित कर कृषि औजार और घरेलु हथियार बनवाते हैं जिसके एवज़ में अनाज प्रदान किया जाता है जिसे "खलीक" कहते हैं । अर्थात वस्तु का विनिमयकरण ग्रामीण समाज का अभिन्न अंग आज भी विद्यमान हैं ।

vi) **फसलें:** इस गाँव में फसलों का वर्गीकर छह प्रकार से किया जा सकता हैं- मोटे अनाज, बारीक अनाज, दलहन, तिलहन, नकदी और सब्जियां । मोटे अनाजों में- गेहूं, धान, जौ, मक्की आदि सम्मिलित हैं । बारीक अनाजों में- कोदा, शांओक, चिनोई, चोलाए, कावणे आदि शामिल हैं जिन्हें लम्बे समय तक भंडारित किया जा सकता है इसमें कोदा और चोलाए ऐसे पौष्टिक अनाज है जिन्हें कई पीढ़ियों तक रखा जा सकता हैं और इन्हें अकाल का अनाज कहा जाता है। दलहनों में- माश, माशोड़े, भोट, कुल्थी, शुन्ठे, लोबिया, राजमाह आदि उगाए जाते हैं। तिलहनो में तिल, तोड़िया, सूरजमुखी, मूंगफली आदि है । नकदी फसलों में अदरक, हल्दी, लाल मिर्च, कालीजीरी, आलू और सब्जियों में लहसुन, प्याज, बाथू, मैथी, कचालू, गागोई आदि उगाये जाते हैं । वर्ष में दो या तीन फसलें उगाई जाती हैं रवी की फसल और खरीफ की फसल । रवी के फसल अक्तूबर-नवंबर में बीजी

जाती है जिसमें गेंहू, जौ, मसूर, तोड़िया, लहसुन और प्याज आदि प्रमुख हैं ये फसल मई और जून में पक कर तैयार होती हैं और इसे कटाने के बाद खरीफ की फसल जिसमें-मक्की, धान, अदरक, लाल मिर्च, कपास, आलू, कालिजिरी आदि बीजे जाते हैं । खरीफ की फसलों में ही बारीक अनाज जैसे- कोदा, शांवक, चिणोए, कावणे आदि भी बीजा जाता हैं जो अत्यधिक पौष्टिक होते हैं और जिन्हें कई वर्षों के लिए भंडारित किया जाता है । रवी और खरीफ की फसल के मध्य किसान आलू और चौलाई की फसल उगाने में कामयाब होते हैं जिनका बाज़ार में बेचने पर अच्छा दाम प्राप्त होता हैं । ये दोनों फसलें अधिकतर ऊँचाई वाले क्षेत्र जैसे भगनाडी, गुन्दडा, बदराह आदि में अच्छी होती हैं । दालों में लोबिया, राजमाह, माश, माशोड़ी, भोअट, कुल्थी, शुंठे, मसूर आदि रवी और खरीफ की फसल के साथ-साथ ही बीजे जाते हैं और फसल तैयार होने से पहले ही इन्हें एकत्र कर किया जाता हैं । माश, माशोड़े, भोट, तिल, शूंठे, लोबिया, आदि मक्की की साथ ही बीजे जाते हैं । तिल को केवल खेत के किनारों पर जबकी बाकी फसले मक्की के साथ पूरे खेत में छिड़क कर बीजे जाते हैं । कुल्थी अकेले ही अलग खेत में बीजी जाती हैं । इसके अलावा कावणे, शांओक आदि भी मक्की के साथ ही बीजा जाता है लेकिन चिणोंए, चौलाए, कोदा अलग से ही बीजे जाते है । फसलों को बीजने से पहले खेत को अच्छे तरह हल लगाकर गोबर डाला जाता हैं और फिर फसल को छिड़ककर फिर हल लगाया जाता हैं । तिलहनो में तिल, तोडिया मुख्य फसल हैं । इसके अतिरिक्त किसान अपने लिए ताज़ी सब्जियां जैसे बैंगन, भिन्डी, करेला, कद्दू, मीठा करेला, खीरा, ककड़ी, चचरेंडा, लौकी, तुम्बडी, आदि भी उगाता हैं ।

vii) **व्यापार एवं वाणिज्य:** झकांडो गाँव के लोग व्यापार और वाणिज्य के व्यवसाय से प्रत्यक्ष रूप से नही जुड़े हैं केवल अपने उत्पाद को बाज़ार तक पनुचाते हैं और उनकी बिक्री कर अपनी जरूरत का सामान खरीदते हैं । इस गाँव ने दैनिक वस्तुओं की बिक्री के लिए दो तीन छोटी-छोटी परचून की दुकाने अवश्य हैं जिन मे से दो झकान्डो, एक भटोडी, दो देवनल, एक भगनाडी स्थित हैं और ये छोटे दुकानदार केवल दैनिक आवश्यकता का ही सामान बेचते हैं किसानो या फिर गाँव के लोगों से सीधी खरीददारी नहीं करते हैं । गाँव के कुछ दुकानदारों ने शिलाई या फिर रोनहाट में दो चार दुकाने शुरू की है । लोगों को अपने कृषि उत्पाद बेचने के लिए चुड़पुर (विकासनगर), पानीपत, सोनीपत या फिर दिल्ली जाना पड़ता हैं । सौंठ, कालीजीरी और कुल्थी के व्यापारी बहार से आकर सीधे किसानो से खरीदते हैं । चुड़पुर, कालसी, चकारोता, जगाधरी, शैईया यहाँ के लोगों के पुराने व्यापार और वाणिज्य के केंद्र रहे हैं जब लोग अपनी पीठ पर सौंठ, लाल मिर्च, हल्दी, घी, कुल्थी, कलीजीरी आदि घर यहाँ तक पहुंचाते थे और एक दर्जन भर लोग साथ हाट के लिए जाते थे जिसके कारण यहाँ के लोगों को आज भी “हाटी” कहते हैं और इस पूरे हाट में एक सप्ताह तक दिन लग जाते थे । हात को जाते समय अपने खाने का सारा

प्रबंध साथ लेकर चलते थे जिसमे ज्यादातर लोग "सातु' साथ लेकर जाते थे चूँकि इन्हें पकाने की आवश्यकता नाहे होती है और पाने की साथ घोल कर मसाले, चटनी या फिर गुड़ के साथ खाए जाते हैं । अपने उत्पाद बेचने के बाद निर्धारित बाणियों से वर्ष भर के लिए कपड़ा, नमक, शीरा, गुड़ और कुछ जरूरी मसाले खरीदते थे जिसके लिए कुछ नकद रकम चुकाए जाती थे और शेष राशी बही-खाते डाली जाती थी ताकि अगली बार भी ग्राहक उसी दुकानदार से जुड़ा रहे ।

viii) **मजदूर:** इस गाँव में श्रमिक सरलता से उपलब्ध है क्योंकि निर्धनता और बेकारी है जिसके लिए एक तो मानसून आधरित कृषि, दूसरा छदम बेरोजगारी और तीसरा व्यवसायी शिक्षा का अभाव उत्तरदायी हैं । किसी भी घर में बहार से या फिर गाँव के किसी भी श्रमिक को अपने दैनिक कार्यों के लिए नहीं रखे जाते हैं । जरूरत पड़ने पर या फिर किसी बड़े कार्य आने पर गाँव के लोग खुद एक दुसरे की मद्द करते हैं जिसे "बुआरा' कहते हैं और ये 'साटा-बाटा" पद्दति पर आधारित हैं अर्थात जब किसी ने आव्हस्यकत पड़ने पर "बुआर" की है तो समय पड़ने पर उस बुआर को वापिस भी चुकता करना होता है । दर्जनों की संख्या में इस गाँव से लोग मजदूरी करने के लिए शिमला, जुब्बल, रोहड़ू, कोटखाई, नाहन, पांवटा साहिब, सोलन आदि स्थानों पर जाते हैं और दिहाड़ी कमा कर घर पैसा लाते हैं । जोड़ीदारी प्रथा में दो भाइयीं में से एक-एक भाई बारी बारी से मजदूरी करने जाते हैं ताकि एक घर की देखभाल और लोकाचारी निभा सकें । एक समय में बहुत ही गरीब लोग किसी साधन-सम्पन्न घर में "बैठ" का भी प्रचलन था जिसमें "बैठू" (व्यक्ति) उस घर का हर काम करता था जो इसे सौंपा जाता था और इसके एवज़ में ऋण दी गयी राशि की ब्याज नहीं जुड़ती थी । उस व्यक्ति को केवल खाना प्रदान किया जात था और तब तक "बैठ" करता था जब तक ऋण की राशि चुकती न की गयी हो । कई घरों के लोगों ने जिनके पास जमीन ज्यदात अधिक है और काम करने वाले लोग कम है उन्होंने उन हरिजन परिवारों को अपनी भूमी खेती के लिए दी है और उसके एवज में ये लोग भूमी देने वालों के घर समय पड़ने पर 'बुआर' करते हैं ।

ix) **संचार व यातायात साधन:** वर्तमान में झकान्डो गाँव दो सडकों के मध्य स्थित हैं दक्षिण में राष्ट्रीय राज मार्ग ७०७ है और उत्तर में द्राबिल से गताधार तक जाने वाली राज्य सड़क हैं जो की यातायात की दृष्टि से ग्रामीण जीवन की रेखाएं है । इसके अतिरिक्त लगभग सभी उप गाँव प्रधान मंत्री सड़क जोड़ो योजना के तहत लिंक रोड से जुड़ चुके हैं जैसे नीचला भागनाडी, गुन्दडा, देवनल, कौउटा, ठेलेणु, झकान्डो अदि । लेकिन अभी भी बहुत से उप गाँव जैसे बन्दराह, भाटोडी, भजाऊटी, शोकल आदि सड़क से महरूम है और इस उपगांव के किसानो को अपने उत्पाद पीठ पर लाद कर दो किलोमीटर दूर सड़क तक पहुँचाने पड़ते हैं । बीमारी की स्थिति में मरीज़ को घीले में रजाई दाल कर उठा कर सड़क तक पंहुचाया जाता है और किसी गर्भवती महीला को अचानक दर्द उठाने पर खाट

पर सड़क तक पंहुचाया जाता है । गाँव में गिने-चुने चार-छह घर के लोगों के पास ही अपनी व्यक्तिगत गाडिया रखी है और तीन-चार लोग ही ऐसे हैं जिन्होने मालवाहक के लिए अपने छोटे ट्रक रखे हैं । ढूलान के काम के लिए कई घरों ने खच्चर के जोड़े रखे हैं जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर दिहाड़ी में ढूलान के लिए उपलब्ध करवाई जाती हैं । संचार के लिए गाँव में एक डाकघर मौजूद है जो .....से कार्य कर रहा हैं जिसका कार्यालय गुन्दडा में श्री जगत सिंह जी के घर में हैं । गाँव का डाकिया श्री गोपाल सिंह जी बुजुर्गों, विधवाओं, दिव्यान्गो आदि की पेंशन घर घर पहुंचाते हैं । एक सायं में ये डाक डाकिया की पीठ पर १० किलोमीटर भट्नौल से नैनीधर जाती थी और बीच में झकांडो की डाक भी यही डाकिया छोड़ता था । डाकघर में टेलीग्राम करने, बचत खाता खुलवाने, आवर्ती जमा करने के अतिरिक्त सभी केंद्रीय डाक योजनाओं की सुविधा उपब्ध है । वर्तमान में हर घर में मोबाइल फ़ोन मौजूद हैं जिससे संचार की सुविधा का और अधिक विकास हुआ हैं आज सोशियल नेट वर्किंग के ज़माने में फेसबुक, व्हाट्सएप, इन्स्टाग्राम, ट्विटर, युट्यूब आदि इस ग्राम के युवा भी चलाते हैं । और गाँव की हर बोलती तस्वीर चाहे वो उस्तव हो, पर्व हो, मेला हो या त्यौहार हो या फिर लोक नाटी का कार्यक्रम हो सब सोशियल नेट-वर्किंग साईटों पर साँझा किया जाता है ।